सिद्धों का खजाना

कृतिकार

प.पू. युगप्रमुख श्रमणाचार्य, गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

Scanned with CamScanner

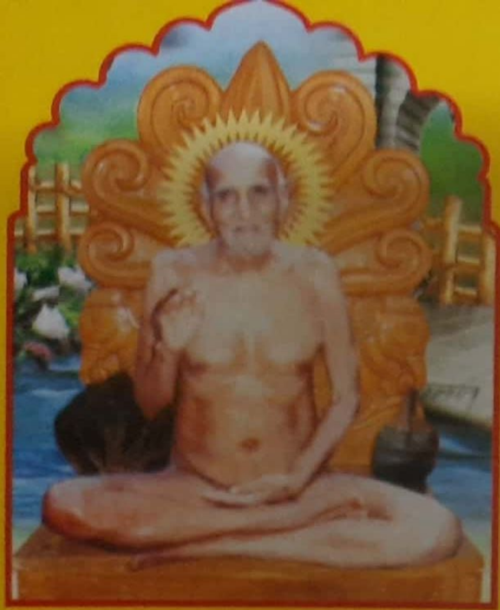

प.पू. वात्सल्य रत्नाकर आचार्य 108 श्री विमलसागरजी महाराज

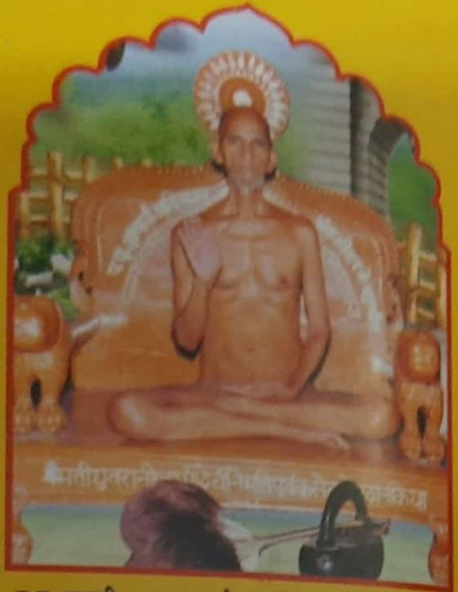

प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य 108 श्री सन्मतिसागरजी महाराज

प.पू. राष्ट्रसंत, गणाचार्य 108 श्री विरागसागरजी महाराज

सिद्धों का खजाना

-: प्रवचनकार :-

प.पू. विश्वहितैषी, राष्ट्रसंत, गणाचार्य, युगप्रमुख, श्रमणाचार्य

श्री 108 विराग सागर जी महाराज

-: संकलन :-

पूज्य श्रमणी आर्यिका विदिताश्री माताजी

-: संपादन :-

पूज्य श्रमणी आर्यिका विदक्षाश्री माताजी

-: प्रकाशक :-

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ

बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग : प.पू. प.पू. राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज के स्वर्णिम जयंति वर्ष के पावन अवसर पर

कृति : सिद्धों का खजाना

प्रवचन : प.पू. राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज

संकलन : पू. श्रमणी आर्यिका विदिताश्री माताजी

संपादन : पू. श्रमणी आर्यिका विदक्षाश्री माताजी

संस्करण : प्रथम, सन्–2012

प्रतियाँ : 1000 प्रतियाँ

पुण्यार्जक : गुप्तदान, जयपुर

मूल्य : 30/– रु.

प्राप्ति स्थान : 1. श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ
बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.) मो. 09754803220

2. आचार्य श्री विरागसागर विद्यापीठ (बी.एड. कॉलेज)
विराग भवन, पुष्प विहार कॉलोनी, बीना
जिला–सागर (म.प्र.) मो. 09425135816

मुद्रक : राजू ग्राफिक आर्ट
मनिहारों का रास्ता, जयपुर (राज.)
फोन : 0141–2313339, मो. : 9829050791

जीवन बिन्दु

(प.पू. गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज)

पूर्व नाम : अरविन्द जैन (टिन्नू)

जन्म : 2 मई, 1963, गुरुवार
(वैशाख शुक्ला 9, संवत् 2020, पथरिया)

माता–पिता : श्रीमति श्यामादेवी जैन
(समाधिस्थ आ. विशांत श्री माताजी)
ब्र. श्री कपूरचंद जी जैन
(संघस्थ पू. क्षुल्लक श्री 105 विश्ववंद्य सागर जी महाराज)

बहिन : श्रीमति मीना जैन, श्रीमति विमला जैन

भाई : श्री विजय कुमार, श्री सुरेन्द्र कुमार,
बा.ब्र. श्री नरेन्द्र भैया जी

लौकिक शिक्षा : इण्टर, मध्यमा (पथरिया, श्री शांति निकेतन, दि. जैन संस्कृत विद्यालय, कटनी, म.प्र.)

क्षुल्लक दीक्षा : 20 फरवरी, 1980
(फाल्गुन शु. 5 सं. 2036 बुढ़ार, शहडोल)

नामकरण : पूज्य क्षु. श्री 105 पूर्ण सागर जी महाराज

क्षु. दीक्षा गुरु : परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री 108 सन्मति सागर जी महाराज

मुनि दीक्षा : 9 दिसम्बर, 1983 (मगसर शु. 5, वि.सं. 2040), औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

नामकरण : प.पू. मुनि श्री 108 विराग सागर जी महाराज

मुनि दीक्षा गुरु : प.पू. निमित्तज्ञानी आचार्य श्री 108 विमल सागर जी महाराज

आचार्य पद : 8 नवम्बर, 1992 (कार्तिक शु. 13 वि.सं. 2049) रविवार, द्रोणगिरि

संयम सृजन : आचार्य 8, मुनि 59, आर्यिका 53, ऐलक 4, क्षुल्लक 29, क्षुल्लिका 17 तथा ब्रह्मचारी भाई–बहिनें। कुल–174

समाधि सल्लेखनायें : 39 तथा सहयोग 11

चातुर्मास : 1980 से 2012 तक क्रमशः
दुर्ग (छत्तीसगढ़), कारंजा लाड (महाराष्ट्र), कारंजा लाड (महाराष्ट्र), नागपुर (महाराष्ट्र), भावनगर (गुजरात), पाँचवा (राज.), निमाज (राज.), जयपुर (राज.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), टीकमगढ़ (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), द्रोणगिरि (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), बीना (म.प्र.), ललितपुर (उ.प्र.), मढ़ियाजी (जबलपुर), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), शिखरजी (झारखंड), गया (बिहार), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), भिलाई (छत्तीसगढ़), कारंजालाड (महा.), मूडबिद्री (कर्नाटक), मेलचित्तामूर (तमिलनाडु), उदगाँव (महाराष्ट्र), मुम्बई (महाराष्ट्र), गाँधी नगर (गुजरात), लोहारिया (राज.), अजमेर (राज.), जयपुर (राज.)

साहित्य सृजन : (1) वारसाणुपेक्खा ग्रन्थ पर 1100 पृष्ठीय सर्वोदयी संस्कृत टीका
(2) रयणसार ग्रन्थ पर 800 पृष्ठीय रत्नत्रयवर्धिनी संस्कृत टीका
(3) अनेक शोधात्मक चिन्तनीय, बालकोपयोगी कथा, अनुवाद, गद्य, संपादित साहित्य जीवनी एवं प्रवचन साहित्य

जाप्य : लगभग 1 करोड़ 90 लाख से अधिक

व्रत : कर्मदहन, भक्तामर, णमोकार मंत्र, चारित्रशुद्धि, चौंसठ ऋद्धि, दर्शन विशुद्धि, षट्रसीव्रत, नीतिसार, वचनगुप्ति, अष्टमी चतुर्दशी नीरस, समवशरण व्रत आदि उपवास व नीरस।

तप-त्याग : मटर दही, तेल, बेर, करोंदा, टिण्डा, जामुन, सभी हरी पत्ती, छोड़ सभी फली, पपीता, कटहल, लवेडे, कद्दू, तरबूज, भिण्डी, खुरबानी, सीताफल, रामफल, फालसा, अंगीठा, आलूबुखारा, चैरी, शक्करपारा, कुंदरू, स्ट्रोबेरी आदि आजीवन त्याग।

विशेष त्याग : कूलर, पंखा, लेपटॉप, मोबाइल, हीटर, नेलकटर, सन् 1985 से, थूकने का त्याग सन् 1983 से

पंचकल्याणक : लघु वृहद् मिलाकर – 52

प्राक्कथन

प्रत्येक मोक्षार्थी को सर्वप्रथम मोक्ष का सही स्वरूप समझना चाहिए, क्योंकि वही उसका परम लक्ष्य है।

बहुत से लोग मोक्ष को चाहते तो है, पर उसका सही स्वरूप नहीं समझते, अतः उनका मोक्ष के प्रति सच्चा उत्साह जागृत नहीं होता, उनकी मोक्ष प्राप्ति की इच्छा ऊपर-ऊपर ही रह जाती है।

मोक्ष के सम्बन्ध में जैनेतर दार्शनिक अनेक प्रकार की बातें करते हैं। कोई कहता है कि मोक्ष में आत्मा का अभाव हो जाता है, कोई कहता है– उसके ज्ञानादि गुणों का नाश हो जाता है, वह जड़वत् रहा जाता है। कोई कहता है– वह परमात्मा में जाकर मिल जाता है, उसका स्वतंत्र अस्तित्व शेष नहीं रहता। कोई कहता है– आत्मा मोक्ष में जाकर भी जगत् कर्तृत्व रूप राग-द्वेष तो करती ही रहती है, पूर्णतः वीतराग नहीं होती। कोई कहता– आवश्यकता पड़ने पर वह आत्मा पुनः संसार में जन्म (अवतार) धारण करती है, इत्यादि।

किन्तु जैन दार्शनिकों ने इन सभी मान्यताओं को युक्ति एवं आगम के आधार पर मिथ्या सिद्ध किया है, जिसका विस्तृत वर्णन हमें सिद्धों के स्वरूप निरूपण के प्रसंग में मिलता है। अतः प्रत्येक मोक्षार्थी को सर्वप्रथम सिद्धों के स्वरूप को सावधानीपूर्वक समझना चाहिए।

सिद्धों के स्वरूप को समझने में भी उनके आठ गुणों का स्वरूप समझने से बड़ी सहायता प्राप्त होती है। अतः सिद्धों के आठ गुणों को समझना एक अत्यन्त उपयोगी विषय है।

दिगम्बर जैन संत गणाचार्य विरागसागर जी की प्रस्तुत कृति **''सिद्धगुणाष्टकम्''** सिद्धों के आठ गुणों को बड़े ही सरल एवं रोचक ढंग से समझाती है, अतः अत्यन्त उपादेय है और सभी को इसका स्वाध्याय करना चाहिए। ऐसी कोई अन्य कृति मेरे देखने में नहीं आई। यह बहुत सराहनीय कार्य है।

–वीरसागर जैन

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
0.	प्राक्कथन	5
1.	भक्ति में अद्‌भुत शक्ति	8
2.	नंदीश्वर द्वीप महान	16
3.	सिद्धचक्र की महिमा	23
4.	अनंत ज्ञान : 'ज्ञान समन्दर पाओ'	30
5.	अनंत दर्शन : 'दर्शन की महिमा गाओ'	38
6.	अनंत सुख : 'जीवन को सुखी बनाओ'	50
7.	अनंत वीर्य : 'बलशाली बन जाओ'	61
8.	सूक्ष्मत्व गुण : 'तुम सबमें समाओ'	76
9.	अवगाहनत्व : 'सबको दिल में बिठाओ'	91
10.	अगुरुलघुत्व : 'ऊँच-नीच का भेद मिटाओ'	104
11.	अव्याबाधत्व : 'बाधा को दूर भगाओ'	116

भक्ति में अद्‌भुत शक्ति

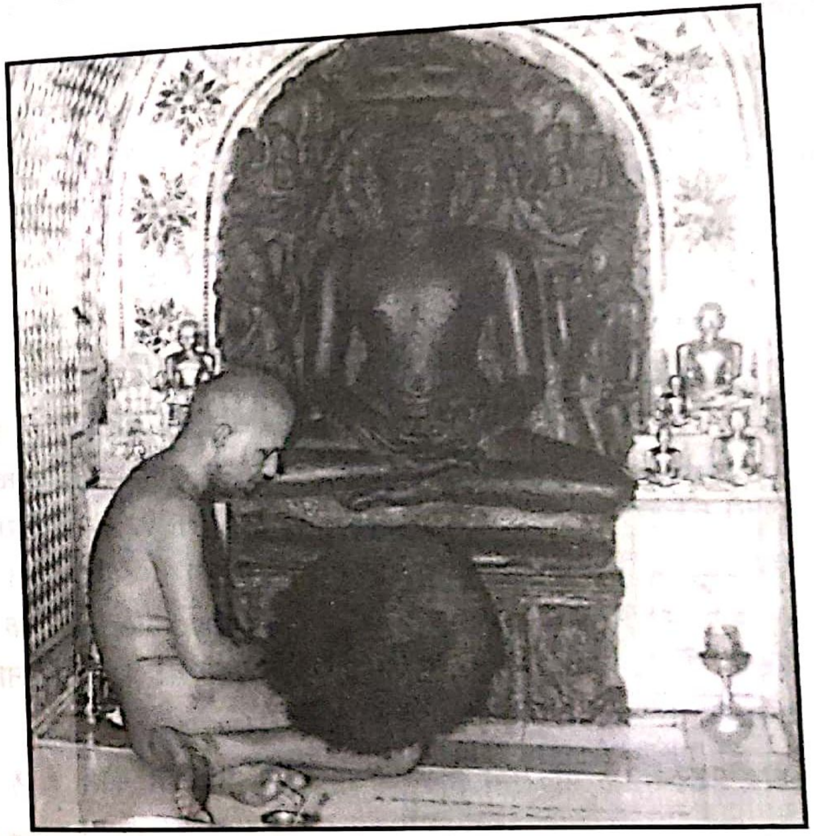

(श्री पार्श्व प्रभु)

स्वार्थसहित संसार में, बंधु कौन हमारा है,
प्रभु भक्ति ही ऐसी नौका, जिसने सबको तारा है।
भक्ति तो एक दीप है, घोर कलयुग में हमको,
ज्ञानी ध्यानी ऋषियों ने भी, इसका लिया सहारा है।।

"भक्ति में अद्भुत शक्ति"

बन्धुओ ! अष्टाह्निका पर्व की पावन पीयूष बेला में हम विराजे हैं। अवसर है सिद्धार्चना का। सबसे उत्कृष्ट भक्ति यद्यपि देवों के होती है। तथापि मनुष्य भी अपनी शक्त्यनुसार सिद्धों की अर्चना करते हैं। हम स्वर्ग के देव न सही, परन्तु देवों जैसा रूप बनाकर अर्थात् सौधर्म इन्द्र, ऐशान इन्द्र आदि पदों को धारण कर कल्पना करते हैं कि हे भगवन् ! हम इंद्रादिक बन उत्कृष्ट शक्ति सम्पन्न हो गये हैं, क्योंकि बिना शक्ति के भक्ति नहीं होती।

आप लोग कहते भी हैं–

भूखे भजन न होय गोपाला।
जा तोरी कंठी जा तोरी माला॥

यदि दो चार दिन भूखे रहना पड़े तो भगवान की पूजन करने की हिम्मत नहीं रहती। यदि एक उपवास भी हो जाए तो सुबह-सुबह चक्कर आने लगते हैं। विज्ञान भी स्वीकारता है– Energy है तो Work होगा यदि Energy नहीं है तो बैठे रहो शांति से। विज्ञान कहता है अमुक चीज में Vitamins है, अमुक में Calcium, अमुक में Carbohydrate तो अमुक में Fat । हरी पत्तेदार सब्जी खाओ तो आँखों की रोशनी बढ़ेगी। यहाँ हमारा जिन धर्म तथा तीर्थंकर कहते हैं– प्रभु भक्ति करो।

अब प्रश्न है कि भक्ति में शक्ति है या शक्ति से भक्ति होती है ?

तो दोनों भक्ति व शक्ति एक सिक्के के दो पहलू हैं। यह भी सत्य है कि भगवान की भक्ति से हमारे अन्दर स्फूर्ति, नवीन ऊर्जा का संचार होता है तो दूसरी ओर शक्ति के बिना भक्ति करने की ताकत नहीं रहती। खाये-पिये बिना भक्ति संभव नहीं दिखती। परन्तु भगवान का सच्चा भक्त पेट पूजा बाद में, पहले देव पूजा करता है। अब शक्तिमान बनने के लिए क्या करें ? अष्टाह्निका पर्व आ गया है। तो आचार्य कहते हैं– तुम्हें शक्तिमान बन जाना चाहिए। आपने टी.वी. में शक्तिमान को देखा होगा। वह तो एक Spider

men (स्पाइडर मेन) मकड़ी का मानव है। परन्तु आपको स्पाइडर मेन नहीं स्वर्गों के देव बनना है। परन्तु देव बनने के लिए मरना नहीं पड़ेगा अपितु सौधर्म इन्द्र की वेशभूषा धारण कर अपने अन्दर सौधर्म इन्द्र की स्थापना करनी होगी। जिसमें जिसकी कल्पना कर ली जाती है वह उसकी तरह हो जाता है। यदि आप में सौधर्मादिक की कल्पना कर ली गई है तो आप शीघ्र सौधर्मादिक इन्द्र बन जायेंगे। और इन्द्र बनकर उसकी तरह शक्ति सम्पन्न हो जायेंगे। इन्द्र के अन्दर इतनी शक्ति होती है कि वह तीनों लोकों को पलट सकता है। यद्यपि वह ऐसा करता नहीं है, तथापि शक्ति सम्पन्न होता है। यदि आज आप इन्द्र बने हैं तो शक्तिशाली भी अवश्य बनेंगे। और आठवें नन्दीश्वर द्वीप न भी जा पाये तो भी नन्दीश्वर द्वीप की कल्पना हम यहीं से कर प्रभु अर्चना करने तैयार हो चुके हैं। भगवान की भक्ति करने का मानस हमने बना लिया है। क्योंकि भक्ति वह सेतु है जिस पर आरूढ़ होकर प्राणी भवसिंधु से पार हो जाता है। भक्ति भगवान को अपनी ओर आकृष्ट करती है। भक्ति करने वाला भक्त एक दिन उनके समान सद्गुणों को पा लेता है और स्वयं उस प्रभुता को पा लेता है। प्रभु की सम्यक् प्रकारेण की गई निःकांक्षित भक्ति भव-भव में संचित किये पाप कर्मों का क्षय करती है। आचार्य श्री मानतुंग जब आदीश्वर की भक्ति में डूबे तो बोल उठे–

त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।

अर्थात् शरीरधारी प्राणियों के भव-भव में संचित पाप कर्म हे भगवन् ! आपके स्तवन से क्षणभर में क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। पूजन में भगवान की भक्ति की महिमा बताते हुए कहा गया है–

विघ्नौघा प्रलयं यांति, शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषो निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥

जिनेश्वर के स्तवन से विघ्न प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् प्रभु भक्ति सारे विघ्नों का नाश करती है। जब चंदन बाला के जीवन में विघ्न

आये तो भगवान महावीर ने दूर कर दिये। जब अंजना पर कर्मों का कहर टूटा तो पंच परमेष्ठियों ने कष्ट हर लिया। जब द्रोपदी पर कष्ट आया तो प्रभु के स्मरण से कष्ट दूर हो गया। कहने का तात्पर्य यह है कि विघ्नों को भी विघ्नहर से डर लगता है। इसलिए विघ्नहर का नाम लेते ही विघ्न वैसे ही छूमंतर होता है जैसे सिपाही को देख चोर। बड़े-बड़े शाकिनी व भूत, प्रेत भी प्रभु के नाम स्मरण से दूर भाग जाते हैं। भगवान के नाम में वह शक्ति है कि भूत को भी चक्कर आने लग जाते हैं और वह भी भाग जाता है।

जब हम मीरा की भक्ति देखते हैं तो श्रीकृष्ण के प्रेम में पागल मीरा ने जब प्रभु भक्ति करते-करते विष का प्याला पिया तो वह भी अमृत में बदल गया। कवि धनञ्जय का पुत्र प्रभु भक्ति के प्रभाव से ही सर्पदंश होने पर भी जीवित हो गया।

एक बार एक सज्जन मेरे पास आये बोले-महाराज ! आप रोज प्रवचनों में सुनाते हैं कि भगवान की भक्ति करो, प्रभु की अर्चना करो, परन्तु आखिर उस भक्ति से होता क्या है ? मैंने कहा- मैं तुम्हें एक सुभाषित सुनाता हूँ तो तुम्हें सब रहस्य मालूम हो जायेगा। आचार्य सकलकीर्ति महाराज कहते हैं-

लक्ष्मीरस्त्वभिवृद्धिरस्तु विजयश्रीरस्तु दीर्घायुर-
स्त्वाशावर्तितकीर्तिरस्तु शुभमस्त्वारोग्यमस्तु स्थिरम्॥
श्रेयः श्रीपदमस्तु दुस्तरतपोभाजां जगद्भूभुजां।
भव्यानां भवभीतिभारविधुरे भक्त्या स्थापिते॥705॥

-सुभाषित रत्नावली

संसार के भय से रहित श्री जिनेन्द्र भगवान की भक्तिपूर्वक हृदय में स्थापना करने पर, भक्ति पूजन करने से भव्य जीवों को-

(1) लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

(2) अभिवृद्धि होती है।

(3) विजयलक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

(4) दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

(5) उसकी कीर्ति सम्पूर्ण दिग्मण्डल में व्याप्त होती है।

(6) शुभ होता है।

(7) आरोग्य की प्राप्ति होती है।

(8) स्थायी कल्याण होता है।

(9) दुस्तर तप से युक्त मुनिजनों एवं जगत् के राजाओं को अंतरंग व बहिरंग लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

(1) जिस लक्ष्मी की आज दुनियाँ दीवानी है। पैसा-पैसा-पैसा हाय। पैसा ! जिस पैसे के पीछे दुनियाँ पागल हुयी जा रही है वह लक्ष्मी भी उसकी दासी बनती है जो प्रभु चरणों की स्थापना हृदय में कर लेते हैं।

आज दुनियाँ के लोग कहते हैं कि 'Money is God' 'मनी इज गॉड' अर्थात् पैसा ही भगवान है। वहाँ दूसरी ओर आचार्य भगवन्त कहते हैं-

'God give money' 'गॉड गिव मनी' यानि ईश्वर पैसा देते हैं। तो क्या भगवान के पास कोई पैसा छापने की मशीन है क्या ? तो भैय्या ! भगवान के पास पैसा छापने की मशीन हो या न हो परन्तु पैसा तो वहीं बरसता है जहाँ प्रभु भक्ति होती है। लक्ष्मी जिनकी चरण दासी है, उनकी सेवा से क्या वह लक्ष्मी तुम पर प्रेम नहीं करेगी। अपने स्वामी का सेवक किसे इष्ट नहीं होता। त्रिलोकीनाथ के सेवकों पर तो लक्ष्मी की विशिष्टानुकंपा होती है। इसलिए प्रभु भक्ति 'श्री' की प्राप्ति कराती है।

(2) प्रभु अर्चना, भक्ति करने वाले भक्त की निरन्तर अभिवृद्धि होती ही जाती है। वह जिस दिशा में कदम बढ़ाता है सफलता प्राप्त करता है। भक्त का पलड़ा हर क्षेत्र में भारी होता है। हनुमान जी पुल बना रहे थे, हृदय में श्रीराम के प्रति उनकी अटूट भक्ति थी। बस भक्त ने भगवान का नाम स्मरण किया तो पत्थर की शिला भी समुद्र में तैरने लगी। सबको आश्चर्य-क्या कभी समुद्र में पत्थर का पुल बन सकता है ? आप से कहें तो आप भी विश्वास नहीं करेंगे। परन्तु हनुमान की शिला तो तैर रही थी। राम ने सोचा-

हनुमान की तैर सकती है तो मेरी क्यों नहीं। शिला जैसे ही फेंकी डूब गई। हनुमान जोरों से हँस दिये। भगवन् ! आपने ये क्या किया ? जो प्रभु के हाथों से ही छूट गया वह तैरेगा कैसे ? वह तो भवसमुद्र में डुबकियाँ लगायेगा। प्रभु भक्ति करने वाले की दिन दूनी रात चौगुनी अभिवृद्धि होती है। इसलिए प्रभु भक्ति का कोई अवसर खोना नहीं चाहिए।

(3) जहाँ श्रीमज्जिनेन्द्र देव के प्रति हृदय भक्ति से सराबोर है वहाँ तो विजय सुनिश्चित होती है। भरत चक्रवर्ती जब षट्खण्ड विजय हेतु दिग्विजय यात्रा पर निकलता था तब युद्ध करने के पूर्व अपने इष्ट परमात्मा का स्मरण अवश्य करता था। कभी-कभी 8-8 दिन के उपवास पूर्वक भगवत् अर्चना में लीन होकर अंतर ऊर्जा को जाग्रत करता था। परिणाम स्वरूप हर युद्ध में सुनिश्चित रूप से विजयलक्ष्मी को पाता था।

(4) प्रभु की भक्ति करने वाला भक्त दीर्घायु होता है। इसका एक वैज्ञानिक तथ्य भी है-परिणामों की संक्लेशता से more energy loss होती है। अधिक energy loss होने से Internal & External Power Low हो जाता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता नष्ट होती है। व्यक्ति रोगों से ग्रसित होकर असमय में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, परन्तु जो प्रभु भक्ति करते हैं उनके संक्लेशता की हानि व विशुद्धि की अभिवृद्धि होती है जिससे रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और व्यक्ति दीर्घायु होता है।

दूसरी ओर जब हम आगम का आलोडन करते हैं तो कषायप्राभृत ग्रंथ जो 'जयधवला' टीका है उसमें आचार्य वीरसेन महाराज कहते हैं कि संक्लेशता करने से कषाय स्थानों में अभिवृद्धि होती है और कषाय स्थान में वृद्धि होने से विशुद्धि घटती है। और जहाँ विशुद्धि स्थान घटे और संक्लेश स्थान बढ़े वहाँ आयु के निषेक तीव्रता से खिरते हैं। परिणाम स्वरूप व्यक्ति की शीघ्र मृत्यु हो जाती है वह दीर्घायु नहीं हो पाता तथा जो प्रभु भक्ति करता है उसका संक्लेश स्थान घटता है व विशुद्धि स्थान बढ़ता है। बढ़ी हुई विशुद्धि आयु के निषेकों को धीरे-धीरे खिरने देती है। परिणामस्वरूप व्यक्ति दीर्घायु होता है।

(5) भक्त की कीर्ति सम्पूर्ण दिग्मंडल में व्याप्त होती है। भगवान के सच्चे भक्त जहाँ-जहाँ जाते हैं, भक्ति की सुवास सर्वत्र बिखेरते जाते हैं और उनकी सम्यक् भक्ति का ही अचिन्त्य प्रभाव होता है कि भक्त की कीर्ति दशों दिशाओं में फैल जाती है। चाहे उद्यायन राजा हो या जिनेन्द्रभक्त सेठ, चाहे रानी रेवती हो या अनंतमती, भक्ति के प्रभाव से ही प्रसिद्धि हो गई। भक्त प्रसिद्धि चाहता नहीं है, परन्तु भक्ति के प्रभाव से प्रसिद्धि स्वयं हो जाती है। यदि प्रसिद्धि पाने के लिए कोई भक्ति करने लगे तो फिर उसके द्वारा की गई भक्ति सम्यक् नहीं कहलायेगी तथा मोक्ष के समीचीन लक्ष्य को प्रदान नहीं करायेगी। इसीलिए सच्चा भक्त परमात्मा के चरणों में बाहर से नहीं अंतरमन से समर्पित होता है और आंतरिक समर्पण ही उसे कीर्ति रूप उपलब्धि प्रदान कराता है।

(6) भगवान की भक्ति करने से सारे अशुभ टल जाते हैं तथा शुभ ही शुभ कार्य होते हैं। शकुन शास्त्र में शकुन/अपशकुन की बात आती है। यदि प्रातःकाल किसी झगड़ालू का चेहरा दिख जाये तो सारा दिन बुरा बीतता है और यदि प्रातःकाल प्रभु के प्रशमित शांत मुखमंडल के दर्शन हो जाए तो सारा दिन आनंदित, सुखमय व शुभ होता है। फिर जिसके नेत्रों में प्रतिपल प्रभु विराजते हों उसका सारा जीवन ही शुभमय हो जाए तो आश्चर्य ही क्या है ?

(7) भक्त कभी रोगी नहीं होता, क्योंकि रोगों को जन्म देने वाला व्यक्ति का मन है, हमारे अशुभ परिणाम हैं। कहा जाता है-

''मन चंगा तो कठौती में गंगा'' मन ठीक नहीं तो सब बुरा। दिमाग Tension में है तो फूल भी शूल की तरह चुभते हैं, फिर शरीर कैसे स्वस्थ रह सकता है, परन्तु जहाँ प्रभु भक्ति की वाणी के तार झंकृत होते हैं वहाँ आनंद ही आनंद/परमानंद होता है और वह परमानंद ही आरोग्य प्रदान करता है। यह भी एक मनोवैज्ञानिक व वैज्ञानिक तथ्य है।

(8) प्रभु भक्ति लौकिक पदार्थों को उपलब्ध कराती है तो परम्परा से मुक्ति भी दिलाती है। लौकिकता में देखा जाता है कि राजा की सेवा करने

वाला धन, यश आदि लाभ पाता है, परन्तु जो त्रिलोकीनाथ की सेवा करता है वह तो उस सेवा के फलस्वरूप स्वयं त्रिलोकपूज्य हो जाता है। त्रिलोकीनाथ की पूजा पूजक को ही पूज्य बना देती है अर्थात् वह स्थायी कल्याण को प्रदान कराती है।

(9) दुर्धर तपस्वियों व राजा-महाराजाओं को भी प्रभु भक्ति से अंतरंग व बहिरंग अभ्युदय की प्राप्ति होती है। जो तपस्वी प्रभु भक्ति करते हैं वे बाहर में समवशरण आदि व अंतरंग में अनंत चतुष्टय रूप महालक्ष्मी को पाते हैं।

इसलिए विवेकीजनों को चाहे सुख हो या दुःख, स्वस्थता हो या अस्वस्थता, निर्धन हो या धनवान, हर हाल में प्रभु भक्ति करते ही रहना चाहिए। क्योंकि भक्ति ही पतित को पावन बना देती है। निर्बल को बल देती है। दीन को दीनानाथ तथा अनाथों को सनाथ बना देती है। इसलिए प्रभु भक्ति करते जाइए व शिवपुर को शीघ्र पाइए।

इसी शुभ/मंगल भावना के साथ...

॥ 1008 पार्श्वनाथ भगवान की जय॥

नो मुक्त्यै स्प्रहयामि नाथ, विभवैः कार्यं न सांसारिकैः।
किन्त्वायोज्य करौ पुनः पुनरिदं त्वामीशमयर्थये॥
स्वप्ने जागरणे स्थितौ विचलने दुःखे सुखे मन्दिर।
कान्तारे निशिवासेर च सततं भक्तिर्ममास्तु त्वयि॥537॥ (सु.स.)

अर्थ- हे नाथ ! मैं मुक्ति नहीं चाहता हूँ और मुझे सांसारिक वैभवों से कुछ कार्य नहीं है, किन्तु मैं दोनों हाथ जोड़कर आपसे पुनः-पुनः यही एक प्रार्थना करता हूँ कि स्वप्न में जगाने में, खड़े होने में, चलने में, दुःख में, सुख में, घर में, वन में, रात में, दिन में, सदा मेरी आप में भक्ति विराजमान रहे, यह चाहता हूँ।

नन्दीश्वर द्वीप महान

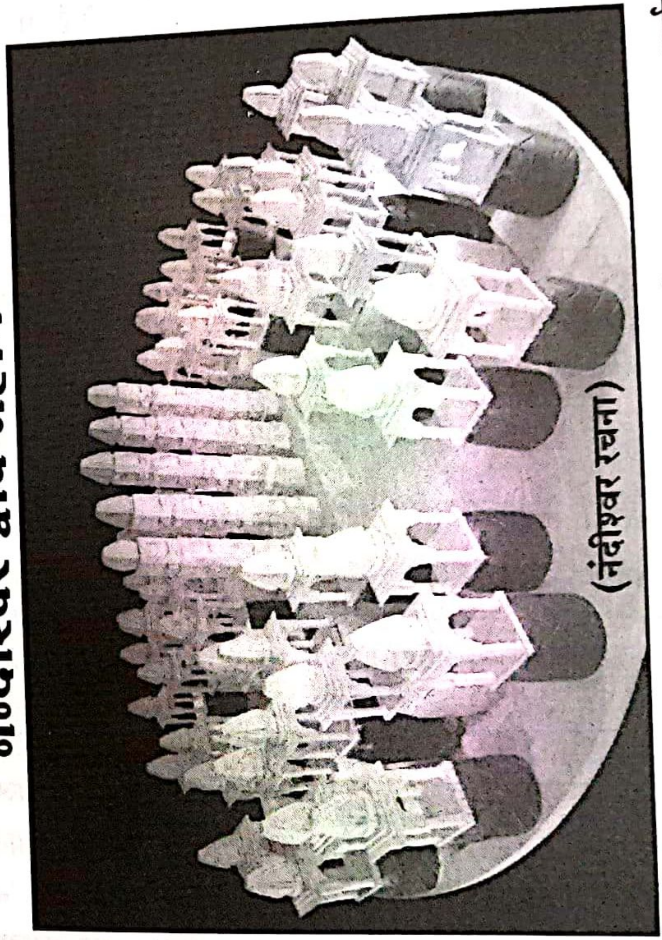

(नंदीश्वर रचना)

पंख पसारे मन का पंछी, नंदीश्वर वंदन को जाए, बावन अकृत्रिम चैत्यालय, साक्षात् दर्शन कब पाए।
देव चतुर्विध जाते हैं, अष्टाह्निका विधान को, जोड़कर वंदना यहीं से, अनुपम मूर्तिमान को॥

"नंदीश्वर द्वीप महान् - जो भक्ति का है धाम"

बन्धुओ ! भक्ति ही मुक्ति का मंगल द्वार है। प्रायः भक्त गण भगवान की भक्ति, इष्ट/आराध्य/परमात्मा की भक्ति हर पल करते हैं, परन्तु पर्व विशेषों में भक्ति का महत्त्व विशेष होता है। 'अष्टाह्निका पर्व' का सभी पर्वों में विशेष महत्त्व है। इस अवसर पर देवतागण आठवें नंदीश्वर द्वीप जाकर भगवान की आराधना करते हैं। आषाढ़ माह की अष्टाह्निका विभिन्न प्रकार के व्रत, नियम व संयम की प्रारम्भिक स्थली है। साधना का प्रवेश द्वार है। आराधना का मंगल द्वार है। देवता गण बड़े हर्ष के साथ धूमधाम से भगवान की अर्चना करते हैं। मध्य लोक में असंख्यात द्वीप-समुद्र होते हैं। उनमें से पहला जम्बूद्वीप है जिसे चारों ओर से घेरे हुए लवण समुद्र होता है, जिसके बाद धातकी खंड नामक दूसरा द्वीप है। इस प्रकार एक द्वीप व एक समुद्र को घेरे हुए असंख्यात द्वीप हैं। इसमें से आठवाँ द्वीप नंदीश्वर द्वीप है। इस अष्टम द्वीप में देवता गण ही जा सकते हैं। मनुष्य तो मात्र अढ़ाई द्वीप में ही रहते हैं। मानुषोत्तर पर्वत के आगे मनुष्यों का जाना निषिद्ध है।

उस नंदीश्वर द्वीप का सुन्दर वर्णन करते हुए नंदीश्वर द्वीप की पूजन की जयमाला में कहा है-

एक सौ त्रेसठ कोड़ि जोजन महा, लाख चौरासिया एक दिश में लहा।
आठमो द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं, भौन बाबन प्रतिमा नमों सुखकरं॥
चार दिश चार अञ्जनगिरि राजहीं, सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं।
ढोल सम गोल ऊपर तले सुंदरम्, भौन बाबन प्रतिमा नमों सुख करी॥
एक इक चारदिश चार शुभ बाबरी, एक इक लाख जोजन अमल जल भरी।
चहुँ दिशा चार वन लाख जोजन वरं, भौन बाबन प्रतिमा नमों सुखकरं॥
सोल वापीनमधि सोलगिरि दधिमुखं, सहस दश महाजोजन लखत ही सुखं।
शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे, चार सोलै मिलै सर्व बाबन लहे॥
एक इक सीस पर एक जिन मंदिरं, भौन बाबन प्रतिमा नमों सुखकरं।

बिम्ब आठ एक सौ रतनमयि सोहही, देव देवी सरव नयन मन मोहही॥
पाँच सै धनुष तन पद्मासन परं, भौन बाबन प्रतिमा नमो सुखकरं।

नंदीश्वर द्वीप अपने आप में पावन, पुनीत और पवित्र है। परन्तु मनुष्य इस द्वीप में नहीं जा सकते, मात्र देवता ही जा सकते हैं। इस नंदीश्वर द्वीप का विस्तार 1 अरब 63 करोड़ 84 लाख योजन प्रमाण है। नंदीश्वर द्वीप के मध्य में चारों दिशाओं में अनुपम दिव्य रचना है जिसके मध्य में श्याम पत्थर है। जिसकी मिट्टी काली है, संस्कृत में इसे अंजन कहते हैं, इस कारण इस पर्वत का नाम अंजनगिरि के नाम से जाना जाता है। सामान्य गिरि/कृत्रिम गिरि (जो पर्वत हमारे द्वारा बनाये जाते हैं) वे नष्ट भी हो जाते हैं। परन्तु अंजनगिरि शाश्वत गिरि है। वह एक ढ़ोल की तरह गोल पर्वत है, जो कि 84000 योजन विस्तार वाला है। इस अंजनगिरि के ऊपर एक अकृत्रिम चैत्यालय है, उसके चारों ओर विशाल बावड़ी है। जो कि 84000 योजन प्रमाण है। उसके ऊपर दही की तरह वर्ण वाला एक श्वेत पर्वत है जिसे दधिमुख पर्वत कहते हैं। बावड़ी के चारों ओर एक-एक विशाल वन है। अशोक, आम्र, सप्तपर्ण, चंपक वन - ये चार वन हैं। अर्थात् एक-एक दधिमुख संबंधी 4 वन हैं। तो 4 दधिमुख संबंधी कुल 4 x 4 =16 हुए। यहाँ देवों के निवास स्थान व क्रीड़ा गृह हैं तथा विभिन्न प्रकार की सौम्य रचना है। दधिमुख पर्वत के मुख पर एक विशाल जिन चैत्यालय है। दधिमुख के बाह्य कोणों में 8 रतिकर हैं, ऐसा लोकविचय में आचार्य यतिवृषभ महाराज ने कहा है। लोकविनिश्चय के कर्त्ता कहते हैं कि एक दिशा में रतिकर 16 हैं। बाह्य कोण में 8 चैत्यालय हैं तथा अंतरंग 8 कोणों में देवताओं का निवास है। चारों दधिमुख संबंधी एक दिशा के कुल 8 रतिकर हैं। इस प्रकार एक दिशा में 8 रतिकर, 4 दधिमुख व 1 अंजनगिरि है, इस प्रकार कुल 13 चैत्यालय हैं। सभी पर्वतों के शिखर भाग पर बहुत बड़े-बड़े विशाल जिन मंदिर हैं। एक दिशा संबंधी कुल चैत्यालय 13 हैं तो चारों दिशा संबंधी कुल चैत्यालय 13x4=52 हुए।

एक-एक मंदिर में जो प्रतिमाएँ हैं वे 500-500 धनुष की व पद्मासन से विराजमान है।

4 हाथ = 1 धनुष

500 x 4 = 2000 हाथ ऊँची प्रतिमाएँ हैं।

बंधुओं ! जब हम श्रवणबेलगोला की 57 फीट ऊँची बाहुबली भगवान की प्रतिमा को निहारते हैं तो मंत्र मुग्ध हो जाते हैं तो जहाँ 2000 हाथ ऊँची प्रतिमा हो, वर्तमान गणित के अनुसार

2000 हाथ=1 क्रोस

1 कोश = 2 मील

1 मील= 1½ किमी.

2 x 1½ = 3 किमी. ऊँची पद्मासन प्रतिमा। नंदीश्वर द्वीप की पूजन में इन प्रतिमाओं की बड़ी महिमा गायी है, उसमें कवि कहता है-

लाल नख मुख नयन श्याम अरु श्वेत है।
श्याम रंग भौंह सिरकेश छवि देत है॥
वचन बोलत मनो हंसत कालुष हरं।
भौन बाबन प्रतिमा नमों सुखकरं॥

प्रायः हम पूजा तो करते हैं, चावल चढ़ाकर चल देते हैं परन्तु कभी ऐसा विचार नहीं करते कि ऐसी भगवान की प्रतिमा है। कवि कहता है- नख का अग्रभाग व मुख लाल है। नयन श्याम और श्वेत हैं। भौंहे श्यामवर्णी व सिर के केश भी श्याम हैं। भगवान की मुद्रा वीतरागी है। हँसी, रोष, क्रोध, भय, विषाद नहीं है। उस परम वीतरागी मुद्रा को निहारने का बार-बार मन करता है, न बोलते हुए भी ऐसा लगता है मानो कुछ बोल रही हो। प्रशम शांत मुद्रा है, जिसे देखकर व्यक्ति को हर्ष होता है और जो अंतरंग की कलुषता को हर लेती है।

कोटि शशि भानु दुति तेज छिप जात है।
महावैराग परिणाम ठहरात है॥

जिनके तेज के आगे करोड़ों सूर्य व चन्द्रमा का तेज भी छिप जाता है और महावैराग्य रूप परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं।

बयन नहि कहैं लखि होत सम्यक् धरं।
भौन बाबन प्रतिमा नमों सुखकरं॥

एकटकता से स्थिर मुद्रा से जब देखते हैं तो भगवान की प्रतिमा 8 प्रातिहार्य से सहित है। छत्र, चँवर, भामण्डल, दुन्दुभि बाजे, सिंहासन, पुष्पवृष्टि, अशोक वृक्ष व यक्ष-यक्षिणी से सहित अरहंत देव की प्रतिमा होती है। जिन्हें हम प्रतिदिन णमो-अरिहंताणं पढ़कर नमस्कार करते हैं। ऐसी वे अरहंत प्रतिमाएँ उन अकृत्रिम चैत्यालयों में 1-2 नहीं अपितु 108-108 की संख्या में है तथा रत्नजड़ित अथवा विभिन्न रत्नों की प्रतिमाएँ हैं। कैसा वह मनोहारी दृश्य होगा जहाँ 108-108 विशाल-विशाल प्रतिमाएँ हों। कितना मनोज्ञ व सुन्दर दृश्य होगा। भद्र मिथ्यादृष्टि जीव इन प्रतिमाओं को देखते ही सम्यक्त्व को ग्रहण कर लेते हैं। हम कहते हैं कि हे अरहंत परमात्मा ! हमारा मोक्षमार्ग प्रशस्त करें, आपके प्रति हमारी आस्था वृद्धि को प्राप्त हो, हमारे सम्यग्दर्शन निर्मल व विकसित हो, सम्यक् चारित्र निर्दोष, निर्मल, परिपूर्ण हो। क्योंकि जब तक हमारे अन्दर रत्नत्रय की पूर्णता नहीं होगी, तब तक मोक्ष नहीं हो सकता इसलिए हमारे जीवन में हमें रत्नत्रय की प्राप्ति हो।

जिन देवाधिदेव की चारों निकायों के देव पूजा-अर्चना करते हैं, सपरिवार पूजा भक्ति करते हैं। इन्द्र अपने सम्पूर्ण परिकर को लेकर आता है और भगवान की बहुत भक्ति करता है। सौधर्म इन्द्र को आदि लेकर दक्षिण दिशा में भवनवासी, पश्चिम में व्यन्तर, उत्तर दिशा में ज्योतिषी देव होते हैं। देवता एक-एक पहर में 1-1 दिशा में, एक-एक जिनबिम्ब की पूजा करते हैं। दिगम्बर परम्परा में पंचकल्याणक की पूजा होती है। जब-जब देव जिनेन्द्र देव की अर्चना करते हैं तो पंचकल्याणक पूजा करते हैं। फाल्गुन, आषाढ़ व

कार्तिक माह की अष्टाह्निका में मुख्य रूप से देवतागण नंदीश्वर द्वीप जाते हैं और भगवान की अर्चना, पूजन करते हैं। यह एक शाश्वत पर्व है। नंदीश्वर भक्ति में लिखा है–बहुत से देव प्रेक्षागृह में बैठकर अभिषेक देखते हैं, अभिषेक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में भी हेतु बनता है तथा असंख्यात गुणश्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा कर, पुण्य का संपादन करता है। परमपूज्य आचार्य भगवन् 108 सन्मतिसागरजी महाराज कहते हैं–दक्षिण यदि अभिषेक प्रधान है तो उत्तर पूजन प्रधान है। देवता बड़ी भक्ति के साथ भगवान का अभिषेक व अष्ट द्रव्य से पूजन करते हैं। दक्षिण की ऐसी परम्परा है कि भक्त जब भी भगवान के द्वारे आता है तो खाली हाथ नहीं आता, कुछ न कुछ अवश्य साथ लाता है। क्योंकि सिद्धान्त है कि जितना चढ़ाओगे उतना पाओगे। मुट्ठी भर चढ़ाओगे तो झोली भर पाओगे। चैत्य भक्ति की अञ्चलिका में देव किन-किन सामग्रियों से भगवान की अर्चना करते हैं, उसका वर्णन करते हुए लिखा है–

दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, सया णिच्चकालं अञ्चन्ति, पुञ्जन्ति, वंदन्ति, णमस्सन्ति अहमवि इह संतो तत्थ सताई सया णिच्चकालं अच्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

देवता गण दिव्य जल, दिव्य गंध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य दीप, दिव्य धूप, दिव्य नैवेद्य आदि देवोपनीत दिव्य सामग्रियों से हमेशा भगवान की अर्चना पूजा करते हैं। आप भी यथायोग्य श्रेष्ठ आठ द्रव्यों से भगवान की पूजन करते हैं। साधुजन भी द्रव्य पूजन नहीं करते अपितु द्रव्य के साथ भाव पूजन करते हैं। हाथ जोड़ना, सिर झुकाना, नमस्कार करना, ये हमारा द्रव्य है। मूलाचार जी की टीका में श्री वट्टकेर स्वामी कहते हैं– साधु आपकी (श्रावक की) द्रव्य में हाथ लगा देते हैं। यह द्रव्य पूजा है। देवता गण एक-एक दिशा संबंधी प्रत्येक प्रतिमाओं की पूजा करते हैं। 1 पहर में सभी प्रतिमाओं

की पूजा कर लेते हैं। दूसरे पहर में पुनः वही क्रम चालू हो जाता है। आचार्यों ने सूर्योदय से लेकर दोपहर तक के काल को 1 पहर कहा है। गणित के हिसाब से 3 घंटे का 1 पहर होता है लेकिन यहाँ 6 घंटे का है। दोपहर से लेकर सूर्यास्त तक दूसरा पहर माना जाता है। सूर्यास्त से अर्द्धरात्रि तक तीसरा पहर व अर्द्धरात्रि से सूर्योदय तक चौथा पहर होता है।

पहले पहर में देवता गण पूर्व दिशा में, दूसरे पहर में दक्षिण दिशा में, तीसरे पहर में पश्चिम दिशा में, चौथे पहर में उत्तर दिशा में जाकर पूजा-अर्चना करते हैं। अष्टाह्निका पर्व के 8 दिनों में देवतागण अहर्निश बिना विश्रांति किये अनवरत भगवान की पूजा-अर्चना करते हैं।

चूँकि एक-एक मंदिर में 108-108 प्रतिमाँ हैं। तो 4 दधिमुख संबंधी। 108x4= 432 जिन प्रतिमा हुई।16 दधिमुख संबंधी 108x16=1728 व 8 रतिकर की एक दिशा संबंधी=108x8=864 इस प्रकार चारों दिशाओं संबंधी 864x4=3456 जानना चाहिए, इस प्रकार कुल प्रतिमाएँ=

1728- 16 दधिमुख
3456- 32 रतिकर
+432 - 4 दधिमुख

कुल 5616 प्रतिमाएँ हुई।

इस प्रकार नंदीश्वर द्वीप संबंधी 52 जिन चैत्यालयों में कुल 5616 जिन प्रतिमाएँ होती हैं जिनकी पूजन, भक्ति समस्त पाप रूपी कलुषता को दूर कर देती है तथा जीवन को सम्यग्ज्ञान रूप प्रकाश से प्रकाशमान कर देती है। आप भी उस अमूल्य निधि को पाने हेतु तत्परता से उद्यमशील हों। इसी भावना के साथ...

''जय बोलिए नंदीश्वर द्वीप संबंधी 52 चैत्यालयों की जय''

सिद्ध चक्र की महिमा

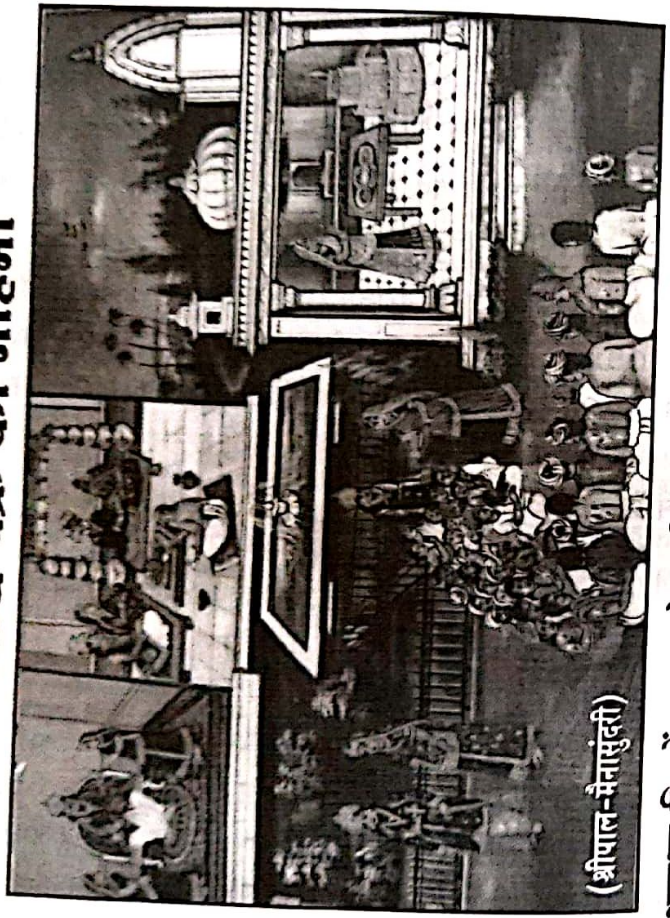

(श्रीपाल-मैनासुंदरी)

सिद्धों का आराधन जिसमें, काज करे हर सिद्ध, सिद्धचक्र विधान रचाओ, जो है जगत प्रसिद्ध।
मैना सुंदरी ने फल पाया, पति का कुष्ट मिटाकर, फल पायेंगे भक्त सभी, मन-वच-तन से ध्याकर।।

''सिद्धचक्र की महिमा''

बन्धुओ ! भक्ति ही अनुपम व प्रबल सेतु है जो मुक्तिपुरी पहुँचा देता है। अष्टाह्निका पर्व की पावन पुनीत बेला में हम प्रभु अर्चना कर रहे हैं। भगवान की भक्ति करने के लिए किसी न किसी माध्यम की आवश्यकता होती है और वह माध्यम हमने **''सिद्धचक्र महामण्डल विधान''** को बनाया है। यह वही सिद्ध चक्र महामण्डल विधान है जिसे श्रीपाल सहित 700 कुष्ठ रोग पीड़ितों को उस भयंकर दुःख से उबारने हेतु स्वयं मैना सुन्दरी ने रचाया था।

कर्म सिद्धान्त पर अटूट श्रद्धा रखने वाली थी, राजा पुहुपाल के आंगन में नाजों में पली वह फूल कुमारी धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त हुई, आर्यिकाओं के समागम में रहकर जिसने जिनधर्म की शिक्षा प्राप्त की थी वह मैना जब बड़ी हुई तो पिता को अपनी दोनों पुत्रियों सुरसुंदरी व मैना सुंदरी के विवाह की चिंता हुई। अतः एक दिन पिता ने अपनी दोनों पुत्रियों को बुलाया और कहा देखो-बेटा ! अब तुम दोनों योग्य व युवावस्था को प्राप्त हो चुकी हो, मैं तुम दोनों का पाणिग्रहण कराना चाहता हूँ। कहो, तुम्हें कैसा वर चाहिए ? सुर सुंदरी तो विवाह की व मनपसन्द वर की बात सुन खुश हो जाती है तथा पिता की बहुत स्तुति/प्रशंसा करती हुई इच्छित वर की अभिलाषा व्यक्त कर देती है। पिता भी खुश होते हैं। अब नंबर था मैना का। मैना पिताश्री के मुख से इच्छित वर की बात सुन दुःखित होती है और सविनय निवेदन करती है कि हे पिताश्री ! आपने मुझे जिन आर्यिकाओं के सान्निध्य में शिक्षित कराया है, उन्होंने मुझे ऐसी शिक्षा नहीं दी। वे तो कहती थीं कि पुत्री के विवाह की चिंता रखने वाला पिता योग्य अवसर पर योग्य वर की तलाश कर स्वयं पाणिग्रहण कर देता है। फिर वह वर चाहे श्रेष्ठ हो या न हो जैसा भी हो वह तो हमारे कर्मों व भाग्य पर निर्भर होता है। पुत्री के लिए तो पिता द्वारा वर ही सर्वश्रेष्ठ व परमेश्वर तुल्य होता है। उच्च कुल की कन्याएँ इच्छित वर की भावना नहीं रखती। कर्म, भाग्य आदि शब्दों को सुन पिता पुहुपाल का माथा

ठनक जाता है। तू मुझे शिक्षा दे रही है, उच्च-नीच कुल की मर्यादाएँ तू मुझे सिखायेगी। पिता से उच्च स्वर में बात करना तुझे किसने सिखा दिया, तेरा पालक मैं हूँ या वे आर्यिकाएँ ? मैना कहती है-हे पिताश्री ! आप तो निमित्त है, हर प्राणी का पालक तो उसका भाग्य है। यदि भाग्य अच्छा नहीं तो कोई कुछ नहीं कर सकता। पिताजी की भृकुटियाँ तन गईं, पिता ने सुरसुंदरी से पूछा-बता बेटी, तू किसके भाग से जीती है ? सुरसुंदरी को तो इच्छित वर मिल ही रहा था इसलिए बोली-अरे पिताश्री ! यह भी कोई पूछने की बात है, आप जैसे महान् राजा जिसके पिता हो उसे क्या कमी ? मैं तो आपके ही भाग से जी रही हूँ। आप ही मेरे पालनहारे हैं। पिता प्रथम पुत्री की बातों से बहुत सन्तुष्ट होते हैं। फिर मैना से पूछते हैं, अब तू बता-तू किसके भाग से जीती है। मैना सुंदरी कर्म सिद्धान्त पर अकाट्य श्रद्धा रखती थी। जिनदेव की ही चरण दासी थी। अतः कहती है-हे पिताश्री ! अपने-अपने भाग्य का निर्माता प्राणी स्वयं होता है, जो जीव पूर्व भवों में जैसे कर्म उपार्जित करता है, आगे के भवों में उन कर्मों का वैसा ही शुभाशुभ फल पाता है। फिर कोई किसी और के भाग्य से कैसे जी सकता है। पिता पुहुपाल को मैना के शब्द तीर की तरह चुभ रहे थे। इसे अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान है, अपने आपको बड़ा विद्वान् समझती है। अभी बताता हूँ कि कितना तुम अपने भाग का खाती हो। पिताश्री को मैना के सैद्धान्तिक वचन पसन्द नहीं आते और वे उसे सबक सिखाने की मन में ठान लेते हैं। वे सोचते हैं कि इस मैना को ऐसा वर तलाशूँगा कि कहना ही पड़ेगा मुझे पसन्द नहीं। पिता पुहुपाल वन विहार हेतु प्रस्थान करते हैं, रास्ते में उन्हें कुछ लोग दिखायी देते हैं जो कुष्ठ रोग से पीड़ित थे। उन कुष्ठियों में जो प्रमुख श्रीपाल थे। राजा पुहुपाल उनके पास पहुँचते हैं और इस तरह वन में रहने का कारण पूछते हैं। श्रीपाल कहते हैं-हम इस महाभयंकर व्याधि से पीड़ित हो अपना राज्य छोड़ यहाँ आये हैं; क्योंकि हमारे इस गलित कुष्ठ की दुर्गन्ध को सहने में नगरवासी समर्थ नहीं हैं। अतः हम जब तक रोग शमन न हो यहाँ ठहरे हैं। राजा पुहुपाल उस कुष्ठी को देख बड़े प्रसन्न होते हैं। वे सोचते हैं कि मैना सुन्दरी के अभिमान को

तोड़ने व सबक सिखाने का सुनहरा अवसर है। राजा पुहुपाल श्रीपाल की बहुत प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि आप हमारे राज्य की सीमा में हैं अतः मैं आपका स्वागत करता हूँ तथा अपनी बेटी का पाणिग्रहण आपसे करना चाहता हूँ। श्रीपाल कहते हैं-आप तो राजा हैं, निश्चित है कि आपकी कन्या नाजुक होगी। वह मुझ कुष्ठी के साथ वन में निवास कर क्या करेगी ? राजा पुहुपाल बोले- आप उसकी चिंता न करें वह तो कर्मों पर सब रख देती है। श्रीपाल बोले- सत्य ही राजन् ! कर्मों की गति विचित्र है। संसार का प्रत्येक प्राणी कर्मों की पराधीनता में ही जी रहा है, मेरे भी पूर्वोपार्जित पाप कर्मों का उदय चल रहा है, इसलिए उनको भोग रहा हूँ। जब विपाक होगा तो चैन व राहत मिलेगी। राजा पुहुपाल ने सोचा- मैना सुन्दरी की तरह यह भी कर्म-कर्म कर रहा है। निश्चित ही मैना के लिए यही वर योग्य है।

राजा पुहुपाल श्रीपाल से आश्वासन लेकर विवाह पक्का कर देते हैं और बिना किसी मुहूर्त्त को देखकर उनका विवाह सुनिश्चित कर अपने स्थान पर लौट आते हैं। यहाँ मैना सुन्दरी से आकर कहते हैं, तेरे ही समान कर्मों की चर्चा करने वाले नवयुवक से मैंने तुम्हारा रिश्ता तय कर दिया है। मैना कहती है- पिता का चुनाव बेटी के लिए सर्वश्रेष्ठ होता है। यहाँ मंत्रियों व घर कुटुम्बियों को जब यह समाचार ज्ञात होता है कि राजा पुहुपाल किसी कुष्ठी से मैना का विवाह करने जा रहे हैं तो सभी राजा की निन्दा करते हैं कि कितना निष्ठुर पिता है, बेटी को कुएं में धकेल रहा है। मंत्री भी बहुत समझाते हैं कि राजन् ऐसा मत करिये। आपकी नाजों में पली बेटी कुष्ठी पति के साथ जीवनयापन कैसे करेगी ? उसका भविष्य क्या होगा ? वह कितना संकट सहेगी ? परन्तु मंत्रियों के उक्त तर्कों का राजा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। राजा कहते हैं-जो वचन दे दिये सो दिये। वचन राजा का प्राण होता है, जो वचन दे चुका हूँ वह वापस नहीं हो सकता। मंत्री परस्पर में चर्चा करते हैं, राजा की तो मति मारी गई है- **''विनाशकाले विपरीत बुद्धि''**। सारी प्रजा में मैना के विवाह की चर्चा को लेकर हा-हाकार मचा था। सबके मुख पर

एक ही बात– पिता पुत्री का दुश्मन बना है। परन्तु मैना के चेहरे पर एक सिकन भी न थी। वह यही विचारती है कि मेरे भाग्य में जो पति लिखा है वही तो मिलेगा, इसमें पिताजी को दोष क्यों देना। जब हर प्राणी अपने कर्मों का कर्त्ता व भोक्ता स्वयं है तो हम दोष दूसरों पर क्यों मढ़ें। मैना तो प्रसन्न थी। पिता ने बिना किसी मुहूर्त देखे मैना का पाणिग्रहण श्रीपाल के साथ कर दिया। दहेज में हाथी, घोड़े, पयादे, अपार धन–संपदा महल, अटारी सब कुछ दिया, परन्तु जब स्वर्ग की अप्सराओं से भी सुन्दर मैना सुन्दरी के फेरे गलित कुष्ठ से पीड़ित श्रीपाल के साथ पड़ रहे थे, तब हर एक आँख भींग रही थी। कितना भी निष्ठुर पिता क्यों न हो परन्तु जब बेटी घर से विदा लेती है तो हर पिता रो पड़ता है, आँखें भींग जाती हैं क्योंकि जिस बीज का वपन किया, नाजों से पालकर पौध बना दिया और उसे अब पराये हाथों में सौंप रहे हैं तो दुःख होना स्वाभाविक है। पहले तो पुहुपाल क्रोधावेश में थे अतः रिश्ता तय कर दिया परन्तु आज पिता का दिल भी रो रहा था कि मेरी मति कहाँ गई थी जब मैंने यह रिश्ता तय कर डाला। राजा पुहुपाल मैना सुन्दरी को हृदय से लगाकर बहुत रोते हैं, विलाप करते हैं। परन्तु मैना तो अभी भी एक ही बात पर अडिग थी कि पिताश्री इसमें आपका कुछ भी दोष नहीं। मेरे भाग्य में श्रीपाल ही होंगे जब पाणिग्रहण तो होना ही था। आज मुझे दुःख इस बात का नहीं कि मेरा विवाह श्रीपाल से हुआ अपितु दुःख इस बात का है कि मुझे अपने भर्त्ता की निन्दा आप सबके मुख से सुनना पड़ रही है। आप को मेरे पति सुन्दर नहीं दिखते; परन्तु मुझे तो मेरे पति कामदेव से भी सुन्दर हैं। जिस घर में मेरे पति का सम्मान न हो, सब तिरस्कृत, हीन दृष्टि से देखते हो उस घर में मुझे एक पल भी नहीं ठहरना। वह कहारों को आज्ञा देती है– शीघ्र मेरी डोली उठाओ और मेरे पति के घर ले चलो। पिता पुहुपाल अपने आपको कोसते हुए बहुत दुःखी होते हैं कि हाय ! मेरी मति मारी गई थी जो अपनी फूल–सी बेटी को कुष्ठी पति से ब्याह दिया। यहाँ मैना की डोली उठती है वहाँ राजमहल में मातम–सा छा जाता है। हर मन दुःखी था। हर आँख में आँसू ही आँसू थे। लगता था सारा राज्य आँसुओं में ही बह जायेगा।

परन्तु मैना तो बहुत खुश थी। जब वह अपने पति के घर पहुँचती है तो श्रीपाल कहते हैं– हे देवि ! तुम मुझसे दूर रहो, क्योंकि मेरे शरीर से दुर्गन्ध आती है, तुम सहन नहीं कर पाओगी। अभी तक जिसका चेहरा हर्ष से प्रफुल्लित था वह मुरझा जाता है, आँखों में आँसू थे। वह हाथ जोड़ अपने पति से कहती–हे स्वामिन् ! क्या मुझसे कुछ अपराध हो गया, या कोई भूल हो गई जो आपने मुझे इतनी कठोर आज्ञा सुना दी, पति की सेवा करना पत्नी का परम कर्त्तव्य है, क्या आप वह सेवा का अवसर छीनना चाहते हैं और बोलते–बोलते मैना रो पड़ती है। श्रीपाल उसकी आँखों में आँसू देख बहुत दुःखी होते हैं। इतने बड़े राजा की फूलकुमारी को मेरे वचनों से आघात पहुँचा, यह तो बहुत बुरा हुआ। वे कहते हैं–हे प्रिये ! मेरा लक्ष्य तुम्हें दुःखी करने का नहीं था। अपितु तुम्हें दुर्गन्धित शरीर से कष्ट न पहुँचे इसलिए मैंने वैसा कहा। मैना सुंदरी पतिभक्ता, पतिपरायणा थी। वह कहती है–हे नाथ ! जो सच्ची पतिभक्ता हो उसे पतिसेवा का अवसर प्राप्त कर कष्ट नहीं अपितु आनन्द होता है। अपितु पति से दूर रहने का अवसर आये तो वह कष्ट महसूस करती है। आप मुझे कष्ट देने की ही तो बातें कर रहे हैं। श्रीपाल कहते हैं ठीक है तुम्हें जो अच्छा लगे वह करो, परन्तु रोना नहीं। क्योंकि तुम्हारे नेत्रों में अश्रु देख मुझे कष्ट होता है। मैना प्रसन्न हो जाती है तथा रात–रात भर जागकर वह श्रीपाल के गलित शरीर पर लेप करती है। हवा करती है। दिन में अनेक बार घावों को साफ करती है। दिन और रात सेवा में तत्पर रहती है। श्रीपाल उसकी पतिभक्ति व सेवा को देख बड़े आनंद विभोर होते हैं व आश्चर्य करते हैं कि कैसे महलों में रहने वाली यह राजकुमारी इतना कष्ट सह लेती है। वे मैना की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। मैना सुन्दरी कहती है कि पति की सेवा पत्नी का प्रथम कर्त्तव्य है फिर इसमें प्रशंसा की क्या बात? दोनों का दाम्पत्य जीवन सुख से बीत रहा था। तभी अचानक वन के समीप के मंदिर में किन्हीं मुनिराज का आगमन होता है। दोनों दर्शनार्थ मुनिराज के पास जाते हैं। भाव भक्ति से मुनिराज को नमोऽस्तु करते हैं। क्षेम

कुशल पूछते हैं। पश्चात् मैना सुन्दरी अपना दुःख मुनिराज से निवेदन कर कष्टों से उबरने का उपाय पूछती है। मुनिराज मैना को आशीर्वाद देते हैं, वह कष्ट निवारणार्थ "**सिद्धचक्र महामण्डल विधान**" करने को कहते हैं। मैना व श्रीपाल सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। मैना बहुत विशद सिद्धचक्र महामण्डल विधान रचाती है। अष्टाह्निका पर्व में आठ दिन तक सिद्धों की अर्चना करती है तथा प्रतिदिन के अभिषेक का जल श्रीपाल सहित 700 कुष्ठियों पर छिड़कती है। उसकी आंतरिक प्रभु भक्ति के प्रभाव से धीरे-धीरे सभी का कुष्ठरोग ठीक होने लगता है और धीरे-धीरे पूरा कुष्ठ रोग ठीक हो जाता है तथा कुष्ठ रोग ठीक होते ही श्रीपाल कामदेव सम सुन्दर रूप के धारी हो जाते हैं वे अपने जीवन में आये इतने बड़े परिवर्तन को देख आश्चर्यचकित रह जाते हैं तथा इसे मैना की पतिभक्ति व सिद्धार्चना का ही महान अभ्युदय मानते हैं।

बंधुओ ! सोचिए जिसकी दुर्गन्ध को सहने में कोई समर्थ नहीं था, वह कामदेव सम सुन्दर हो गया। यह सब सिद्धों की अर्चना का ही प्रतिफल था। आज हम भी सिद्धों की अर्चना करने के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं। समाधि भक्ति में गणधर देव ने सिद्धचक्र कहकर सिद्धों का गुणानुवाद किया है, वे कहते हैं-

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥12॥

जो आठों कर्मों से रहित हैं, जिन्होंने मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया है तथा जो अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य, अगुरुलघु, अव्याबाधत्व, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व- इन आठ गुणों से युक्त हैं- ऐसे सिद्धचक्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

जय बोलिये 'सिद्धचक्र महामण्डल विधान की जय'।

ज्ञान समन्दर पाओ

अनंत ज्ञान गुण युक्त सिद्ध भगवान

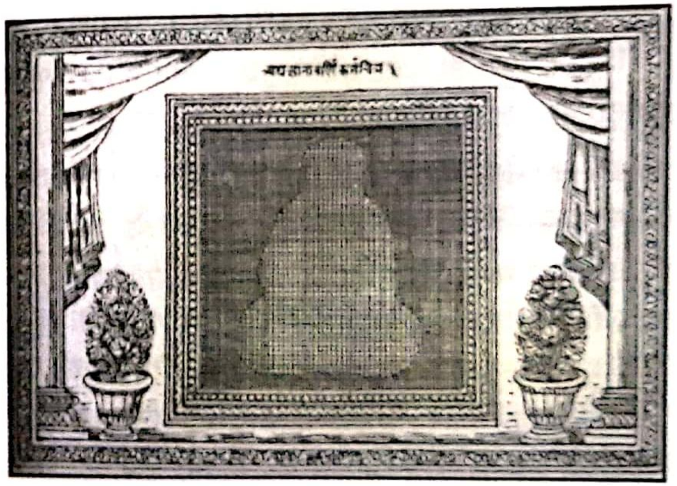

(ज्ञानावरणी कर्म का चित्र)

ज्ञान गुण पर आवरण, ज्ञानावरणी नाम,
ज्ञानावरणी क्षय किये, पाये अनंत ज्ञान।
सिद्धों का गुण है महा, ध्याओ चेतनराज,
तुम भी पा सकते वही, अतुल सुखों का राज॥

कुशल पूछते हैं। पश्चात् मैना सुन्दरी अपना दुःख मुनिराज से निवेदन कर कष्टों से उबरने का उपाय पूछती है। मुनिराज मैना को आशीर्वाद देते हैं, वह कष्ट निवारणार्थ **''सिद्धचक्र महामण्डल विधान''** करने को कहते हैं। मैना व श्रीपाल सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। मैना बहुत विशद सिद्धचक्र महामण्डल विधान रचाती है। अष्टाह्निका पर्व में आठ दिन तक सिद्धों की अर्चना करती है तथा प्रतिदिन के अभिषेक का जल श्रीपाल सहित 700 कुष्ठियों पर छिड़कती है। उसकी आंतरिक प्रभु भक्ति के प्रभाव से धीरे-धीरे सभी का कुष्ठरोग ठीक होने लगता है और धीरे-धीरे पूरा कुष्ठ रोग ठीक हो जाता है तथा कुष्ठ रोग ठीक होते ही श्रीपाल कामदेव सम सुन्दर रूप के धारी हो जाते हैं वे अपने जीवन में आये इतने बड़े परिवर्तन को देख आश्चर्यचकित रह जाते हैं तथा इसे मैना की पतिभक्ति व सिद्धार्चना का ही महान अभ्युदय मानते हैं।

बंधुओ ! सोचिए जिसकी दुर्गन्ध को सहने में कोई समर्थ नहीं था, वह कामदेव सम सुन्दर हो गया। यह सब सिद्धों की अर्चना का ही प्रतिफल था। आज हम भी सिद्धों की अर्चना करने के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं। समाधि भक्ति में गणधर देव ने सिद्धचक्र कहकर सिद्धों का गुणानुवाद किया है, वे कहते हैं-

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥12॥

जो आठों कर्मों से रहित हैं, जिन्होंने मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया है तथा जो अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य, अगुरुलघु, अव्याबाधत्व, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व- इन आठ गुणों से युक्त हैं- ऐसे सिद्धचक्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

जय बोलिये 'सिद्धचक्र महामण्डल विधान की जय'।

ज्ञान समन्दर पाओ

अनंत ज्ञान गुण युक्त सिद्ध भगवान

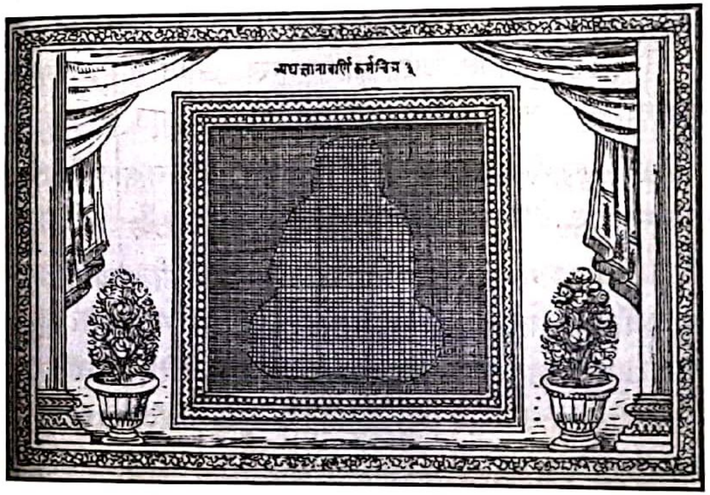

(ज्ञानावरणी कर्म का चित्र)

ज्ञान गुण पर आवरण, ज्ञानावरणी नाम,
ज्ञानावरणी क्षय किये, पाये अनंत ज्ञान।
सिद्धों का गुण है महा, ध्याओ चेतनराज,
तुम भी पा सकते वही, अतुल सुखों का राज॥

''अनंत ज्ञान : ज्ञान समन्दर पाओ''

भव्य मनीषियो ! अष्टाह्निका पर्व की पुनीत बेला में हम आज ''सिद्धचक्र महामण्डल विधान'' के माध्यम से सिद्धार्चना कर रहे हैं।

यदि हम गहराई से चिंतन करें तो सिद्धों में एक नहीं अनंत गुण पायेंगे। क्योंकि उन्होंने अनंत दोषों को जीत लिया है। अनंत दोषों के नष्ट हो जाने से उनमें अनंत गुण उत्पन्न हो गये हैं। उन अनंत गुणों को जान पाना हमारी शक्ति सामर्थ्य से बाहर की बात है। हम उन अनंत गुणों को कहने में समर्थ नहीं हैं। सिद्धभक्ति में आचार्य पूज्यपाद महाराज ने सिद्धों के आठ गुण कहे हैं–

सम्मत्त णाण दंसण, वीरिय सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलघुमव्वाबाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।

अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व, सूक्ष्मत्व व अवगाहनत्व– ये सिद्धों के आठ गुण होते हैं।

ये आठ गुण सिद्धों में किन कर्मों के क्षय से उत्पन्न होते हैं। तो आचार्य पद्मनंदी महाराज ''सिद्ध-स्तुति'' अधिकार में कहते हैं–

दृग्बोधौ परमौ तदावृतिहतेः सौख्यं च मोहक्षयात्,
वीर्यं विघ्नविघाततोऽप्रतिहतं मूर्तिर्न नामक्षतेः।
आयुर्नाशवशान्न जन्ममरणे गोत्रे न गोत्रं विना,
सिद्धानां न च वेदनीयविरहाद्दुःखं सुखं चाक्षजम्॥6॥

सिद्धों में दर्शनावरण के क्षय से केवलदर्शन, ज्ञानावरण के क्षय से उत्कृष्ट ज्ञान केवलज्ञान, मोहनीय कर्म के क्षय से अनंत सुख, अंतराय कर्म के क्षय से अनंत वीर्य, नाम कर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व, आयु कर्म के नष्ट हो जाने से जन्म-मरण का अभाव होकर अवगाहनत्व, गोत्र कर्म के क्षीण हो जाने पर उच्च एवं नीच गोत्रों का अभाव होकर अगुरुलघुत्व तथा वेदनीय कर्म के नष्ट हो जाने से इंद्रियजन्य सुख-दुःख का अभाव होकर अव्याबाधत्व गुण प्रकट होता है।

सिद्धों के उन आठ गुणों में से आज हम प्रथम गुण ''**अनंतज्ञान**'' को समझने का प्रयास करेंगे।

सिद्धों का ज्ञान कैसा है ? तो आचार्य पद्मनंदि महाराज '**सिद्ध-स्तुति**' अधिकार की 5वें नं. की गाथा में कहते हैं–

सिद्धो बोधमितिः स बोध उदितो ज्ञेयप्रमाणो भवेत्,
ज्ञेयं लोकमलोकमेव च वदन्त्यात्मेति सर्वस्थितः।
मूषायां मदनोज्झिते हि जठरे यादृग् नभस्तादृशः,
प्राक्कायात् किमपि प्रहीण इति वा सिद्धः सदानन्दति॥5॥

सिद्धों का ज्ञान अपरिमित है। अर्थात् सीमा से परे असीम व अनंत है, वह ज्ञान सम्पूर्ण लोक व अलोक को विषय करता है। इस प्रकार लोक और अलोक रूप अपरिमित ज्ञेय को विषय करने वाले उस ज्ञान से चूँकि आत्मा अभिन्न है, तत्स्वरूप है, इसी अपेक्षा से आत्मा को व्यापक कहा जाता है। वस्तुतः तो वह पूर्व शरीर से कुछ न्यून रहकर अपने सीमित क्षेत्र में ही रहता है। पूर्व शरीर से कुछ न्यून रहने का कारण यह है कि शरीर के उपांगभूत जो नासिका छिद्रादि होते हैं वहाँ आत्मप्रदेशों का अभाव रहता है। शरीर का संबंध छूटने पर अमूर्तिक सिद्धात्मा का आकार कैसा रहता है, यह बतलाते हुए यहाँ यह उदाहरण दिया गया है कि जैसे-मिट्टी आदि से निर्मित पुतले के भीतर मैन भर दिया गया हो, तत्पश्चात् उसे अग्नि का संयोग प्राप्त होने पर जिस प्रकार उस मैन के गल जाने पर वहाँ उस आकार में शुद्ध आकाश शेष रह जाता है। उसी प्रकार शरीर का संबंध छूट जाने पर उसका आकार मात्र शुद्ध आत्मप्रदेश शेष रह जाते हैं।

इस प्रकार अंतिम शरीर से किंचित् न्यून आकार वाले आत्म प्रदेशों से समन्वित सिद्धों की अवगाहना होती है उन सम्पूर्ण आत्म प्रदेशों में अनंत गुण व्याप्त होते हैं। सिद्धों में केवलज्ञान सम्पूर्ण आत्म प्रदेशों में होता है।

वह केवलज्ञान कितना जानता है– तो '**वीर-भक्ति**' में गणधर परमेष्ठी कहते हैं–

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवितः, सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥1॥

अर्थात् जो सम्पूर्ण चर व अचर यानि चेतन व अचेतन द्रव्यों व उनके गुणों को तथा भूत, भविष्यत् व वर्तमान काल संबंधी सभी पर्यायों को युगपत् (एक साथ) जानते हैं वे 'सर्वज्ञ' कहे जाते हैं।

चेतन द्रव्य–जीव द्रव्य। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल द्रव्य अचेतन द्रव्य कहलाते हैं। जीव द्रव्य के सम्पूर्ण गुण व पर्यायों में केवलज्ञान की वृत्ति है। केवलज्ञान से कुछ भी अछूता नहीं है।

जिन्होंने उस सर्वज्ञता को प्राप्त कर लिया है, उन वीर जिनेश को मेरा बारम्बार नमस्कार हो।

वह केवलज्ञान किस प्रकार उत्पन्न होता है ? तो जब सम्पूर्ण ज्ञानावरणी कर्म का समूल क्षय हो जाता है। तब केवलज्ञान उत्पन्न होता है। 12वें गुणस्थान के अंत में ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी व अंतराय– ये तीन कर्म एक साथ क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।

ज्ञानावरणी कर्म के पाँच भेद हैं–

(1) मतिज्ञानावरण, (2) श्रुतज्ञानावरण, (3) अवधिज्ञानावरण, (4) मनःपर्ययज्ञानावरण कर्म, (5) केवलज्ञानावरण कर्म।

(1) मतिज्ञानावरण कर्म :– पाँचों इन्द्रिय व मन की सहायता से होने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं तथा मतिज्ञान पर जो कर्म आवरण डालता है अर्थात् मतिज्ञान को नहीं होने देता वह मतिज्ञानावरण कर्म है।

(2) श्रुतज्ञानावरण :– मतिज्ञान के द्वारा जाने हुए पदार्थों को विशेष रूप से जो ज्ञान जानता है वह श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान पर जो कर्म आवरण डालता है अर्थात् जो कर्म श्रुतज्ञान नहीं होने देता वह श्रुतज्ञानावरण कर्म कहलाता है।

(3) अवधिज्ञानावरण :– मन व इन्द्रिय की सहायता के बिना मात्र आत्मा से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा को लिए जो रूपी पदार्थों को जानता है वह अवधिज्ञान है तथा जो कर्म अवधिज्ञान पर आवरण डालता है वह अवधिज्ञानावरण कहलाता है।

(4) मनःपर्ययज्ञानावरण :– इन्द्रिय व मन की सहायता के बिना मात्र आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा को लिए दूसरे के मन में तिष्ठते रूपी पदार्थों को जानता है वह मनःपर्ययज्ञान है तथा जो कर्म मनःपर्ययज्ञान को आवरणित करता है अर्थात् मनःपर्ययज्ञानावरण कर्म है।

(5) केवलज्ञानावरण :– जो त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण द्रव्यों व उनके समस्त गुणों और पर्यायों को युगपत् जानता है वह केवलज्ञान कहलाता है तथा जो कर्म केवलज्ञान पर आवरण डाले अर्थात् जिसके उदय में केवलज्ञान उत्पन्न नहीं हो पाता वह केवलज्ञानावरण कर्म कहलाता है।

उपर्युक्त पाँचों ज्ञानावरण कर्मों में से 4 कर्म तो क्षयोपशमिक हैं अर्थात् कर्म के क्षयोपशम पर निर्भर करते हैं तथा पाँचवाँ क्षायिक है अर्थात् ज्ञानावरण के समूल क्षय से केवलज्ञान होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि केवलज्ञानावरण के क्षय से ही केवलज्ञान उत्पन्न होता है तो शेष 4 ज्ञानावरणी कर्मों के क्षय की कोई आवश्यकता नहीं रही। तो इसका समाधान यह है कि आगम में सम्यग्ज्ञान पाँच कहे हैं :– (1) मति, (2) श्रुत, (3) अवधि, (4) मनःपर्यय , (5) केवलज्ञान।

इन पाँचों ही ज्ञानों पर आवरण डालने की प्रधानता से ज्ञानावरणी के 5 भेद कह दिये गये हैं। उपर्युक्त चार ज्ञान तो कर्म के क्षयोपशम से प्रकट होते हैं, अतः जैसे–जैसे कर्म का क्षयोपशम होता है वैसे–वैसे मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान प्रकट हो जाते हैं। परन्तु केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है जो कि केवलज्ञानावरण के क्षय से होता है। इन पाँचों ही ज्ञानावरणी कर्म का जब 12वें गुणस्थान के अंत समय में समूल क्षय होता है तभी केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

क्षयोपशम विशेष होने पर सम्पूर्ण द्वादशांग का ज्ञान प्रकट हो जाता है।

सर्वावधि व परमावधि ज्ञान प्रकट हो जाते हैं। विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान प्रकट हो जाता है, परन्तु 12वें गुणस्थान के अंत में एकत्ववितर्क शुक्लध्यान के माध्यम से साधक जब सम्पूर्ण ज्ञानावरणी का क्षय करता है तो केवलज्ञान प्रकट हो जाता है। (अब प्रश्न है कि आवरक कर्म तो मति, श्रुत आदि ज्ञानों का भी नष्ट हुआ है।) तो मति, श्रुत आदि ज्ञान पूर्ण रुपेण प्रकट क्यों नहीं हुए ? तो समाधान यही है कि मति, श्रुत आदि क्षयोपशमिक ज्ञान है और क्षायोपशमिक ज्ञान छद्मस्थ अवस्था तक ही रहता है तथा केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है तथा क्षायिक ज्ञान केवलियों के होता है। आचार्य उमास्वामी महाराज ने भी तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय में कहा है–

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥30॥

अर्थात् एक जीव में एक साथ एक को आदि लेकर चार ज्ञान तक विभक्त करने योग्य है।

किसी आत्मा में यदि 1 ज्ञान है तो केवलज्ञान होगा।

दो हों तो मति, श्रुत– ये दो ज्ञान होते हैं।

तीन हों तो (1) मति, श्रुत, अवधि

(2) मति, श्रुत, मनःपर्यय

चार हों तो (1) मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय

– ये चार ज्ञान होंगे। परन्तु एक साथ पाँच ज्ञान नहीं हो सकते। क्योंकि पाँचों ज्ञानों में केवलज्ञान निरावरण और क्षायिक है तथा मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्यय ज्ञान – ये चार सावरण व क्षायोपशमिक हैं। क्षायिक व क्षायोपशमिक – ये दोनों ज्ञान एक आत्मा में एक समय में नहीं रह सकते, अतः पाँचों ज्ञानों की युगपत् उपलब्धि असंभव है।

ज्ञानावरणी कर्म का जब समूल क्षय होता है तब केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है। वह ज्ञानावरणी कर्म ही हमें केवलज्ञान नहीं होने देता। उसकी उत्कृष्ट स्थिति 30 कोड़ाकोड़ी सागर की होती है तथा जघन्य स्थिति

अंतर्मुहूर्त है। अर्थात् बांधा हुआ ज्ञानावरणी कर्म अंतर्मुहूर्त में उदय में आकर खिर सकता है अथवा 30 कोड़ाकोड़ी सागर पर्यन्त तक भी चल सकता है। **'श्री जयधवला जी'** में श्री वीरसेन स्वामी कहते हैं कि यह उत्कृष्ट स्थिति अजघन्य–अनुत्कृष्ट परिणामों में बंधती है। ज्ञानावरणी कर्म किन–किन कारणों से बंधता है– तो **'तत्त्वार्थसूत्र'** ग्रंथ के 6वें अध्याय के 10वें सूत्र में कहा गया है–

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥10॥

ज्ञान व दर्शन के विषय में प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अंतराय, आसादन और उपघात– ये ज्ञानावरणी व दर्शनावरणी के आस्रव के हेतु हैं–

(1) प्रदोष :– तत्त्वज्ञान मोक्ष का साधन है, उसका गुणगान करते समय बोलने वाले के भीतर जो पैशून्य रूप परिणाम होते हैं वह प्रदोष भाव है।

माना कि गुरु ने एक शिष्य की प्रशंसा कर दी कि हमारा फलाना शिष्य बहुत अच्छा पढ़ता है तो अन्य लोगों, शिष्यों को यदि बुरा लगता है तो वे कहते हैं–गुरुदेव तो इसी–इसी की प्रशंसा करते हैं। सही तक तो याद नहीं करता। तो उस शिष्य की जो गल्तियाँ अन्य शिष्यों द्वारा बतायी जा रही है वही प्रदोष भाव है तथा ऐसे खोटे भावों से ज्ञानावरणी कर्म का आस्रव बंध होता है।

(2) निह्नव :– किसी विषय का ज्ञान होते हुए भी कहीं दूसरा न सीख जाए इसलिए यह कह देना कि मैं नहीं जानता, मुझे नहीं मालूम इत्यादि निह्नव है। अथवा जिस शास्त्र व गुरु से ज्ञान पाया है उनका नाम छिपाना निह्नव है।

(3) मात्सर्य :– विज्ञान का अभ्यास किया है वह देने योग्य भी है तो भी जिस कारण से वह नहीं दिया जाता है वह मात्सर्य है।

(4) अंतराय :– ज्ञान का विच्छेद करना अंतराय है। जैसे– (1) कोई व्यक्ति पढ़ रहा है और आपने लाईट बंद कर दी। (2) किसी की कॉपी, पुस्तक आदि छिपा देना।

(5) आसादन :- दूसरे के प्रकाशित होते हुए ज्ञान को शरीर या वचन से ढ़ाकना/निषेध करना आसादना है।

(6) उपघात :- प्रशंसनीय ज्ञान में दूषण लगाना।

इस उपर्युक्त किसी भी कारण के उपस्थित होने पर ज्ञानावरणी कर्म बंध को प्राप्त हो जाता है।

जो व्यक्ति अपने ज्ञानावरणी कर्म को क्षय करना चाहते हैं उन्हें अवश्य ही इन कारणों से बचने का प्रयास करना चाहिए।

सिद्ध परमेष्ठी ने समूल ज्ञानावरण को नष्ट कर दिया है इसलिए वे केवलज्ञानी हो गये। यहाँ यह बात महत्त्वशाली है कि हम भी उन सिद्धों के पथानुगामी हैं इसलिए हमें भी ज्ञानावरण के बंधक कारणों से बचते हुए ज्ञानावरण कर्म के क्षय हेतु पुरुषार्थ करना चाहिए तभी हम भी उन सिद्धों की श्रेणी में आ सकेंगे। हम भी उस परम सिद्ध दशा को शीघ्र प्राप्त करें- इस पुनीत भावना से...

॥1008 अभिनंदन नाथ भगवान की जय॥

सिद्धो बोधमिति स बोध उदितो ज्ञेयप्रमाणो भवेत्।
ज्ञेयं लोकमलोकमेव च वदन्त्यामेति सर्वस्थितः॥
मूषायां मदनोज्झिते हि जठरे यादृग नमस्तादृशः।
प्राक्कायात् किमपि प्रहोण इति वा सिद्धः सदानन्दति॥5॥
(प.प.वि. 8)

अर्थ- सिद्ध जीव अपने ज्ञान के प्रमाण है और वह ज्ञान ज्ञेय के प्रमाण कहा गया है। वह ज्ञेय भी लोक एवं अलोक स्वरूप है। इसी से आत्मा सर्वव्यापक कहा जाता है। सांचे में से मैन के पृथक् हो जाने पर उसके भीतर जैसा शुद्ध आकाश रह जाता है ऐसे आकार वाले तथा पूर्व शरीर से कुछ हीन ऐसे वे सिद्ध परमेष्ठी सदा आनंद का अनुभव करते हैं।

दर्शन की महिमा गाओ

अनंत दर्शन गुणयुक्त सिद्ध भगवान

(दर्शनावरणी कर्म का चित्र)

दर्शन गुण पर आवरण, दर्शनावरणी नाम,
दर्शनावरणी क्षय किये, अनंत दर्शनवान।
सिद्धों का गुण है महा, ध्याओ चेतनराज,
तुम भी पा सकते वही, अतुल सुखों का राज॥

"अनंत-दर्शन : दर्शन की महिमा गाओ"

अष्टाह्निका पर्व की पुनीत बेला में आज हम सिद्धार्चना कर रहे हैं। सिद्धचक्र महामण्डल विधान के माध्यम से सिद्धों की अर्चना करते हुए उनके आठ गुणों को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं।

आत्मा की अत्यन्त शुद्ध, निर्मल दशा का नाम सिद्धावस्था है। जीव जब सिद्ध पद को पाता है तो स्फटिक के समान अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

आचार्य श्री पद्मनंदि महाराज 'सिद्ध स्तुति' करते हुए अपने 'पद्मनंदि-पंचविंशतिका' ग्रंथ में कहते हैं–

ये जित्वा निजकर्मकर्कशरिपून् प्राप्ताः पदं शाश्वतं,
येषां जन्मजरामृतिप्रभृतिभिः सीमापि नोल्लङ्घ्यते।
येष्वैश्वर्यमचिन्त्यमेकमसमज्ञानादिसंयोजितं,
ते सन्तु त्रिजगच्छिखाग्रमणयः सिद्धा मम श्रेयसे॥4॥

जो सिद्ध परमेष्ठी अपने कर्मरूपी कठोर शत्रुओं को जीतकर नित्य (मोक्ष) पद को प्राप्त हो चुके हैं, जन्म, जरा, मृत्यु पर जिन्होंने विजय प्राप्त कर ली है तथा जिनमें असाधारण ज्ञान आदि के द्वारा अचिन्त्य एवं अद्वितीय अनन्त चतुष्टय रूप ऐश्वर्य का संयोग कराया गया है; ऐसे वे तीनों लोकों के चूड़ामणि के समान सिद्ध परमेष्ठी मेरे कल्याण के लिए होवें।

चार घातिया कर्मों का क्षय करके जिन्होंने अनन्त चतुष्टय रूपी अंतरंग लक्ष्मी व अघातिया कर्मों के क्षय से जिन्होंने अन्य चार गुण प्रकट कर लिये हैं। उन सिद्धों की अर्चना हम उनके समान उन गुणों की प्राप्ति हेतु कर रहे हैं। क्योंकि गुण ही सर्वत्र पूजे जाते हैं। हम भी अपने सम्पूर्ण दोषों से मुक्त होकर सिद्धों के समान गुणी बनें इसीलिए सिद्धार्चना, उपासना की भावना से यह सिद्धचक्र महामण्डल विधान रचा गया है। 'सिद्ध-चक्र'

इसमें निहित चक्र शब्द महत्त्वशाली है, दुनियाँ में बहुत से चके होते हैं। एक कुम्हार का चक्का है। साईकिल, स्कूटर में भी चक्र होते हैं, आपके ऊपर भी चक्र चल रहा है, पंखा भी चक्र है। एक चक्र चक्रवर्ती की आयुधशाला में उत्पन्न होने वाला सुदर्शन चक्र है। परन्तु ये सांसारिक चक्र है। एक धर्मचक्र है जिसे समवशरण में जब तीर्थंकर विहार करते हैं तो उनके आगे-आगे इन्द्र सिर पर लेकर चलता है। जिसमें नयों का विशद वर्णन है- ऐसा एक नयचक्र भी होता है।

'पुरुषार्थसिद्धियुपाय' में आचार्य अमृतचन्द्र महाराज कहते हैं कि नय विशारद ही इस चक्र को चला पाते हैं। नय-चक्र के बिना धर्मचक्र उपलब्ध नहीं होता है। धर्मचक्र का ईशपना जिसने पाया है वही सिद्धचक्र को प्राप्त कर पाता है। अष्ट कर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट कर सम्यक्त्वादि गुणों को पाने वाले सिद्ध परमेष्ठी हैं। उन्हें नमस्कार करते हुए आज हम सिद्धों के दूसरे गुण अनंतदर्शन को समझेंगे।

दर्शन यानि सामान्य सत्तावलोकन है। दृश् धातु से बना 'दर्शन' शब्द दर्शन/अवलोकन देखने के अर्थ में आता है।

देव दर्शन, गुरु, तीर्थ दर्शन। ये सब देखने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। सांख्य, बौद्ध, वैशेषिक आदि विविध मतों की भी 'दर्शन' संज्ञा है।

दर्शन यानि विचार, दृष्टिकोण, समझने का तरीका। जैन, बौद्ध, मीमांसक आदि-आदि कोई एकपक्षी मत/दर्शन होते हैं। जैन दर्शन सभी धर्मों का कथन करता है इसलिए अनेकांत दर्शन है।

'दर्शन' शब्द मोक्षमार्ग के प्रकरण में श्रद्धा के अर्थ में आता है। कहा जाता है–

'शब्दानामनेकार्थाः' अर्थात् शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं। हम जो कुछ भी जानते हैं उसके पहले सामान्य सत्तावलोकन होता है वही दर्शन यहाँ प्रयोजनीय है।

अंधेरे में प्रकाश डाले तो पहले प्रकाश वस्तु तक पहुँचता है फिर वस्तु दिखती है। वस्तु ठंडी है या गर्म– इस ज्ञान के पहले महासत्तावलोकन होता है परन्तु वह इतना सूक्ष्म है कि वचन के अगोचर है व निर्विकल्प है जबकि ज्ञान सविकल्प है, अतः कहा जा सकता है। चक्षु इन्द्रिय का काम देखने का है। अतः आपने आँख खोली तो कुछ दिखा– यह अवग्रह है। उस अवग्रह के पूर्व महासत्तावलोकन भी होता है परन्तु वह इतना सूक्ष्म है कि हम उसे पकड़ नहीं पाते। वह आगम प्रमाण से श्रद्धा करने के योग्य है।

एक शब्द के बोलने में असंख्यात समय लग जाते हैं। 1 सेकेण्ड के भी 10,000 हिस्से विज्ञान ने कर दिये हैं। जब पंखा तेजी से चलता है तो पांखुरी नहीं गिन सकते मात्र चक्र चलता दिखता है। क्योंकि गति अधिक है, गिनती करना सम्भव नहीं। उसी प्रकार दर्शन, ज्ञान के पूर्व होता है उसे पकड़ना कठिन है। अतः उसे मात्र आगम प्रमाण से ही जाना जा सकता है।

कभी–कभी व्यक्ति भगवान के दर्शन को आत्मा का दर्शन गुण समझ लेते हैं। एक बार एक सेठ जी जो कि प्रतिदिन स्वाध्याय करते थे। मंदिर जी दर्शन करने गये। बेचारे बड़े भाव लेकर तो मंदिर गये, बड़े प्रसन्न व आनंदित थे परन्तु जैसे ही दर्शन करने पुंज लेकर खड़े हुए तभी एक 6 फुट के सज्जन उनके सामने खड़े होकर उदक–चंदन करने लगे। सेठजी को गुस्सा आया, सेठजी बोले– तुझे दर्शनावरणी कर्म अवश्य बंधेगा, तूने मेरे दर्शन में बाधा डाली। वे 6 फुट के सज्जन तो स्वाध्यायशील थे नहीं, सेठजी को गुस्से में देख एक तरफ हो गये। अब सेठजी ने पूजन की सामग्री सजायी और टेबिल रखकर बैठ गये। सोचा आज बड़ी भक्ति से भगवान की 4–5 पूजा करूँगा, मन ही मन आनंदित थे। तैयार होकर बैठे ही थे कि तभी एक मोटी–ताजी सेठानी आकर सेठजी के आगे बैठ गई। सेठजी को भगवान दिखने में परेशानी हो रही थी, वे बड़े प्रेम से बोले– बहिन जी ! थोड़ा बाजू हो जाइए, नहीं तो दर्शनावरणी कर्म बंध जायेगा।

यह दृश्य दूर बैठे पंडितजी बड़े ध्यान से देख रहे थे। सेठजी ने बड़ी भक्ति से पूजन प्रारम्भ कर दी, परन्तु पूजन के बीच में ढोल–मंजीरा लेकर संगीत पार्टी आ गयी, नृत्य करने वाले नृत्य कर रहे थे। नृत्य करते–करते लड़कियाँ, लड़के, बच्चे बार–बार बीच–बीच में आ जाते थे। सेठजी को गुस्सा तो आया, परन्तु पूजन में गुस्सा नहीं करना इसलिए बार–बार बोले जा रहे थे कि तुम सबको दर्शनावरणी कर्म बंधेगा। सुनते–सुनते पंडितजी को बहुत देर हो गई। जब सेठजी की पूजन पूरी हो गई तो पंडितजी ने सेठजी को बुलाया और बोले– सेठजी, ये क्या दर्शनावरणी कर्म बंधेगा की रट लगा रखी है। सेठ जी बोले– ठीक ही तो कह रहा हूँ। जो दूसरे के दर्शन में विघ्न डालेगा उसे दर्शनावरणी नहीं तो क्या ज्ञानावरणी कर्म बंधेगा ? पंडितजी बोले– सेठजी आपका अध्ययन अभी कच्चा है। थोड़ा और स्वाध्याय कीजिए। दर्शन में विघ्न डालने से दर्शनावरणी नहीं अंतराय कर्म का बंध होता है, क्योंकि प्रभु दर्शनों के लाभ में विघ्न उपस्थित किया है। अंतराय कर्म में भी लाभान्तराय कर्म बंधेगा ? सेठजी बोले–पंडितजी, फिर दर्शनावरण का बंध कैसे होता है ? पंडितजी विद्वान थे। अतः बोले– सेठजी, ज्ञानावरण कर्म के आस्रव के कारण हैं, वे ही दर्शनावरण के आस्रव के कारण हैं **''तत्प्रदोषनिन्हव मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः।''**

(1) प्रदोष (2) निन्हव (3) मात्सर्य (4) अंतराय (5) उपघात (6) आसादन। कर्म का बंधन हमें किस कारण से हो रहा है जब यह ज्ञान हमें होता है अर्थात् जब कर्म बंधन के प्रत्ययों पर हमारी दृष्टि जाती है तो हमारे अन्दर सावधानता उत्पन्न होती है कि अब हम उन–उन कारणों से बचेंगे तथा ज्ञान में भी वृद्धि होती है। पहला कारण–

(1) प्रदोष भाव– दूसरे के समीचीन ज्ञान में दोष लगाना।

(2) निन्हव– गुरु व शास्त्र जिससे ज्ञान पाया उसका नाम छिपाना।

(3) मात्सर्य– दूसरे के ज्ञान के समीचीन ज्ञान को प्रकट नहीं होने देना, दूसरा अधिक ज्ञानी है तो उससे ईर्ष्या भाव रखना।

(4) अंतराय– दूसरे के ज्ञान में विघ्न डालना।

उदा.– (1) लाईट बुझा देना, (2) पुस्तक छिपा लेना।

(5) आसादन– प्रशस्त ज्ञान की विनय न करना, उसकी अच्छाई की प्रशंसा न करना।

(6) उपघात– ज्ञान में विघ्न डालना।

इन पाँच कारणों से सदैव बचते रहना चाहिए। यदि कोई ज्ञानार्जन करता है तो विघ्न मत डालिये, सहयोग कीजिए, जिन गुरु से ज्ञान पाया उनके मन, वच, तन से सदैव उपकार स्मरण करना चाहिए। अभिमान में आकर अपनी विद्वत्ता दर्शाने जो गुरु या शास्त्र का नाम छिपाता है वह ज्ञानावरणी व दर्शनावरणी कर्म का बंध करता है।

इसलिए इन कारणों से बचते हुए कर्मों के क्षय हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिए। ज्ञान के पूर्व होने वाला महासत्तावलोकन रूप दर्शन आगम में चार कहे हैं। जिनमें से चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन तो ज्ञान के पूर्व होते हैं। परन्तु केवलज्ञान व केवलदर्शन युगपत् होते हैं, आचार्य श्री नेमीचन्द्र सिद्धान्तिदेव 'द्रव्यसंग्रह' ग्रंथ में कहते हैं–

दंसणपुव्वं णाणं, छदुमत्थाणं ण दोण्णि उवओगा।
जुगवं जम्हा केवली, णाहे जुगवं तु ते दो वि॥

छद्मस्थों में दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है, दोनों उपयोग साथ–साथ नहीं होते। परन्तु केवली भगवान जिन्हें क्षायिक ज्ञान व क्षायिक दर्शन है वे युगपद् होते हैं। दर्शन के चार भेद हैं – **चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल दर्शन।**

(1) चक्षु दर्शन– चक्षु इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान के पूर्व जो सामान्य सत्तावलोकन होता है वह चक्षुदर्शन है।

(2) अचक्षु दर्शन– शेष 4 इन्द्रिय व मन से होने वाले ज्ञान के पूर्व जो सत्तावलोकन होता है वह अचक्षु दर्शन है।

ठण्डा, गर्म, हल्का, भारी आदि का ज्ञान स्पर्शन इन्द्रिय से होता है। इसके पूर्व जो सामान्य सत्ता का अवलोकन अचक्षु दर्शन है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, कर्ण व मन से भी अचक्षु ज्ञान होता है, उस ज्ञान के पहले जो सत्तावलोकन होता है वह सब अचक्षु दर्शन है।

(3) अवधि दर्शन– अवधि ज्ञान के पूर्व होने वाला सामान्य सत्तावलोकन अवधि दर्शन है।

उपर्युक्त तीनों दर्शन क्षायोपशमिक है इसलिए क्रम–क्रम से होते हैं।

(4) केवल दर्शन– केवलज्ञान के साथ जो महासत्तावलोकन होता है वह केवलदर्शन है। केवलदर्शन क्षायिक दर्शन है, इसलिए केवलज्ञान व केवलदर्शन युगपत् होते हैं।

उपर्युक्त चार में से 3 दर्शन तो क्षायोपशमिक दर्शन हैं जो कर्म के क्षयोपशम विशेष पर निर्भर करते हैं। 1 से 3 इन्द्रिय जीवों को नियम से अचक्षु दर्शन ही पाया जाता है।

चतुरिन्द्रिय जीव को चक्षु व अचक्षुदर्शन दोनों पाये जाते हैं।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय– जीवों में चक्षु व अचक्षु दर्शन पाया जाता है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में चक्षु, अचक्षु व अवधि दर्शन पाया जाता है।

13 गुणस्थानवर्ती केवलियों में केवलदर्शन पाया जाता है।

केवलदर्शन क्षायिक दर्शन है। जब सम्पूर्ण दर्शनावरण कर्म नष्ट हो जाता है तो जैसे बादलों के हटने पर हमें स्वच्छ आकाश के दर्शन होते हैं वैसे ही समूल दर्शनावरण का क्षय होते ही आत्मा में क्षायिक दर्शन/केवल दर्शन गुण प्रकट हो जाता है।

विश्व में अनंत पदार्थ हैं जो सामान्य व विशेष गुण सहित होते हैं।

सामान्य गुण – दर्शन

विशेष गुण – ज्ञान है।

केवलदर्शनावरण कर्म आत्मा के दर्शन गुण को घातता है। इसके 9 भेद हैं :-

(1) चक्षु दर्शनावरण- चक्षु दर्शन पर जो आवरण डालता है अर्थात् उसे नहीं होने देता वह चक्षु दर्शनावरण कर्म कहलाता है।

(2) अचक्षु दर्शनावरण- जो कर्म अचक्षु दर्शन पर आवरण डालता है वह अचक्षु दर्शनावरण कर्म है।

(3) अवधि दर्शनावरण- जो कर्म अवधिदर्शन पर आवरण डालता है वह अवधि दर्शनावरण कर्म है।

(4) केवल दर्शनावरण- जो कर्म केवलज्ञान के साथ होने वाले केवलदर्शन पर आवरण डालता है। वह केवलदर्शनावरण कर्म है।

(5) निद्रा- जब निद्रा दर्शनावरणी कर्म का उदय होता है तो नींद आती है। श्रम का परिहार करने वाली निद्रा तो सामान्य होती है। वह सभी संसारी प्राणियों को आती ही है। विज्ञान भी कहता है यदि इंसान श्रमपरिहारी निद्रा न ले तो बीमार पड़ जायेगा। उसके दिमाग की नस भी फट सकती है और लंबे समय तक न सोने वाला पागल भी हो सकता है इसलिए शरीर के श्रम को दूर करने के लिए सामान्य निद्रा लेना तो अनिवार्य ही है, परन्तु कभी-कभी कर्म का तीव्र उदय होने पर व्यक्ति को नींद पर नींद आती है। कभी-कभी व्यक्ति प्रवचन में सोता हो, आप उसे जोरों से हिला भी दो तो एक सेकेण्ड में पुनः सो जाता है। कोई-कोई बच्चे भोजन करते-करते ही सो जाते हैं यह निद्रा-निद्रा कर्म है।

प्रचला के उदय में आंगोपाग चलते हैं। आपने देखा होगा व्यक्ति सोते रहते हैं परन्तु सोते-सोते भी Action चलते हैं, किसी की अंगुलियाँ ऐसे चलती है जैसे लेखन कार्य ही चल रहा हो। प्रचला-प्रचला के उदय में सोते-सोते मुख से लार व सोते-सोते मुख से शब्द निकलते रहते हैं। व्यक्ति पूरा लड़ाई-झगड़ा, हिसाब-किताब सब नींद में कर लेता है। स्त्यानगृद्धि के

उदय में तो व्यक्ति अनहोने अटपटे कार्य कर डालता है। 10वीं मंजिल से भी गिर जाता है पर खरोंच तक नहीं आती, बड़े-बड़े बहीखाते पूरे कर देता है, किसी का मर्डर भी कर दे तो कुछ पता ही नहीं क्या करके आ गये। स्त्यानगृद्धि बहुत खतरनाक होती है। दर्शनावरणी के उदय में ये निद्रायें सताती हैं। जब नींद आयेगी तो अध्ययन, जाप, पाठ कुछ भी नहीं हो पायेगा। सामायिक भी ठीक से नहीं हो पाती। ये सब साधना में आने वाले विघ्न हैं जो समीचीन साधना में बाधा खड़ी करते हैं।

उस दर्शनावरणी के धीरे-धीरे क्षयोपशम बढ़ने पर जीव निद्राजय करके साधना को वृद्धिंगत करता है, परन्तु ध्यान रखिये नींद नहीं आना व निद्राजय में अंतर है। नींद जिसे नहीं आती वह तो रोग है। नींद नहीं आने की बीमारी से पागलपन भी हो सकता है। निद्राजयी होना अलग बात है। निद्राजयी को प्रारम्भिकता में नींद तो आती है परन्तु धीरे-धीरे अभ्यास बनाते-बनाते एक दिन ऐसा आता है कि 1-2, 5 या 10 दिन तक न भी सोये तो भी रह सकता है वह बीमार भी नहीं पड़ता; क्योंकि निद्रा को जीत लिया है। निद्राजय Balance बनाने व अभ्यास से होता है।

अभी भी ऐसे-ऐसे साधक हैं जो 5-5, 10-10 दिन तक सोते नहीं, ध्यान मुद्रा में खड़े रहते हैं। निद्राजय करने वाला ही ध्यान- साधना में सफलता पाता है और समूल दर्शनावरण का क्षय कर क्षायिक दर्शन प्राप्त कर लेता है।

(6) निद्रा-निद्रा- पंखा, कूलर चल रहा हो तो प्रवचनों में भी नींद आ जाती है, कोई जगा दे तो यहाँ-वहाँ देखा, पुनः सो गये। माँ बच्चे को जगाती है, एक बार तो वह आँखें खोल लेता है, परन्तु पुनः सो जाता है। वह निद्रा-निद्रा है।

(7) प्रचला- प्रचला कर्म के उदय में सोते समय अंगोपांग चलने लगते हैं।

(८) प्रचला-प्रचला- मुख से शब्द निकलना, सोते समय लार निकलने लगती है। खोलने पर भी आँखें नहीं खुलती वह प्रचला-प्रचला है।

(९) स्त्यानगृद्धि- नींद में बड़े-बड़े काम कर देते हैं, पूजा करते-करते व्यक्ति सो जाता है। खाते-खाते सो जाता है। बड़े-बड़े भयंकर कार्य कर लेते हैं। नींद में ही व्यक्ति एक गाँव से दूसरे गाँव पहुँच जाते हैं। मुनीम सारे बहीखाते नींद में पूरा कर लेते हैं।

50-50, 100-100 क्विण्टल का सामान व्यक्ति स्त्यानगृद्धि में उठा लेते हैं। एक दार्शनिक किसी आविष्कार को कर रहा था। पत्नी से उसने कह दिया जब तक मेरा काम न हो मुझे disturb मत करना। पत्नी आयी भोजन रख कर चली गई। 3 दिन में उसका काम पूरा हुआ। उसके बदले का भोजन पड़ोसी मित्र खा जाता था। 3 दिन बाद वह पत्नी का लाया टिफिन खाता है, पूरा खा लिया, भूख मिटी नहीं, दूसरा टिफिन भी खा लिया, फिर भी भूख नहीं मिटी। तब मित्र ने याद दिलाया, तुम 3 दिन से भूखे हो, न नहाया-धोया, न खाया। 3 दिन से काम में लगा था।

स्त्यानगृद्धि में व्यक्ति बड़े-बड़े काम कर लेता है, कुछ पता नहीं रहता।

इस प्रकार ये 9 दर्शनावरणी के भेद हैं। इन सभी दर्शनावरणी के भेदों का क्षय होते ही केवलदर्शन प्रकट हो जाता है तथा जब इनका उदय होता है तो प्राणी को संसार में ही भटकना पड़ता है। चक्षु दर्शनावरण कर्म का उदय हो तो दिखाई नहीं देता, आँखों को देखने योग्य क्षयोपशम प्राप्त नहीं हो पाता। अचक्षु दर्शनावरण के उदय में आँख को छोड़ शेष इन्द्रियाँ अपना काम यथावत् नहीं कर पाती। अवधि दर्शनावरण के उदय में अवधिज्ञान/अवधिदर्शन प्रकट नहीं हो पाता।

एक बार एक सज्जन मेरे पास आये और बोले- महाराज, मुझे दिखता नहीं, आशीर्वाद दीजिए। मैंने दे दिया। वह बोला- महाराज, न जाने कौन से

कर्मों का उदय चल रहा है। मैंने कहा-चक्षुदर्शनावरण के उदय में दिखाई नहीं देता। 16 नं. का चश्मा एक 5 साल के बच्चे को लगता है। किसी को दिखाई ही नहीं देता, यह सब दर्शनावरणी का उदय है। परन्तु कभी-कभी आँखों में मोतियाबिन्द हो जाता है तो वह उपकरण की खराबी है। Operation के बाद दिखने लगता है। चश्मा, लैंस देखने का क्षयोपशम नहीं देते, मात्र Ratina पर सही प्रतिबिम्ब बनाने का काम करते हैं। क्षयोपशम तो कर्म के क्षयोपशम से मिलता है। कभी-कभी सुन्दर नेत्र वाला भी देख नहीं पाता; क्योंकि आँख की नसें सूख गई है तो भैय्या यदि क्षयोपशम नहीं है तो बाह्य उपकरण से कुछ नहीं होता है।

आचार्य पूज्यपाद महाराज जो बड़े-बड़े ग्रन्थों के रचयिता हैं, उनकी आँखों की रोशनी चली गई। आँखें साधु के संयम प्राण हैं, क्योंकि समितियाँ व महाव्रत आँखों से पलते हैं। प.पू. आचार्य आदिसागर अंकलीकर व चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी ने आँखों की रोशनी कम हो जाने के कारण ही सल्लेखना व्रत ग्रहण किया था। पूज्यपाद महाराज ने भी अनेक उपवास किये फिर शांतिनाथ भगवान की स्तुति में बैठ गये। शान्त्यष्टक की रचना पूरी होते ही नेत्र खोलते हैं, भगवान दिखने लगते हैं, भक्ति में बड़ी शक्ति है।

हम आँखों का दुरुपयोग करते हैं, व्यक्ति दिन-रात टी.वी. देखते हैं, जिससे आँखें खराब हो जाती है, परन्तु हे भगवन् ! जो आपके चरणों का अवलोकन करने लगते हैं, उनके नेत्र सफल, सुनैना हो जाते हैं। जो सदा अच्छाइयों का अवलोकन करते हैं, वे ही नेत्र सफल हैं। एक सुभाषित में कहा है कि हे भगवन् ! मैं इन नेत्रों से गुणावलोकन ही करूँ, दोषों को देखने में मेरे नेत्र बन्द रहें। पूज्यपाद महाराज की भक्ति का चमत्कार हमारे सम्यग्दर्शन का चमत्कार हमारे सम्यग्दर्शन में हेतु बन जाता है। दर्शन पाठ में कहा है-

''छवि वीतरागी नग्न मुद्रा दृष्टि नासा पे धरे।
वसु प्रातिहार्य अनंत गुण जुत कोटि रवि छवि को हरै॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लह्यो॥''

आपकी वीतरागी, नग्न मुद्रा व नासाग्र दृष्टि, आठ प्रातिहार्य, अनंत गुण कोटि सूर्यों की शोभा को हरते हैं। हे भगवन्! दरिद्र को चिंतामणी रत्न मिलने तुल्य आह्लाद भक्त को तब होता है जब वह भगवान के दर्शन करता है। आज आपके दर्शन से मेरा मिथ्यात्व रूप तिमिर नष्ट हो गया है तथा सम्यग्दर्शन रूप सूर्य उदित हो गया है।

जो नेत्र सदैव परमात्मा के दर्शन करते हैं, सदा दूसरों की अच्छाइयाँ देखते हैं उनका क्षयोपशम बढ़ जाता है। इसलिए दर्शनावरण कर्म के आस्रव व बंध में हेतुक प्रदोष, मात्सर्य आदि कारणों से बचते हुए उनसे मुक्त होने के कारणों का आश्रय लेना चाहिए। निद्रा, प्रमाद को जीतना चाहिए। तभी आप आत्माश्रय ग्रहण कर एक दिन दर्शनावरणी को समूल क्षयकर केवलदर्शन गुण से संपन्न हो, परम पद सिद्धावस्था को प्राप्त हो सकेंगे। इसी भावना के साथ....

॥ 1008 सुमतिनाथ भगवान की जय॥

यथा लोहं सुवर्णत्वं प्राप्नौत्यौषधयोगतः।
आत्मा ध्यानान्तयैवात्मा परमात्मत्वश्नुते॥458॥
(सु.स.)

अर्थ– जिस प्रकार औषध के प्रयोग से लोहा सुवर्णत्व को प्राप्त होता है उसी प्रकार आत्मा आत्मध्यान से परमात्म तत्त्व को प्राप्त होता है, परमात्मा बन जाता है।

जीवन को सुखी बनाओ

अनंतसुख गुणयुक्त सिद्ध भगवान

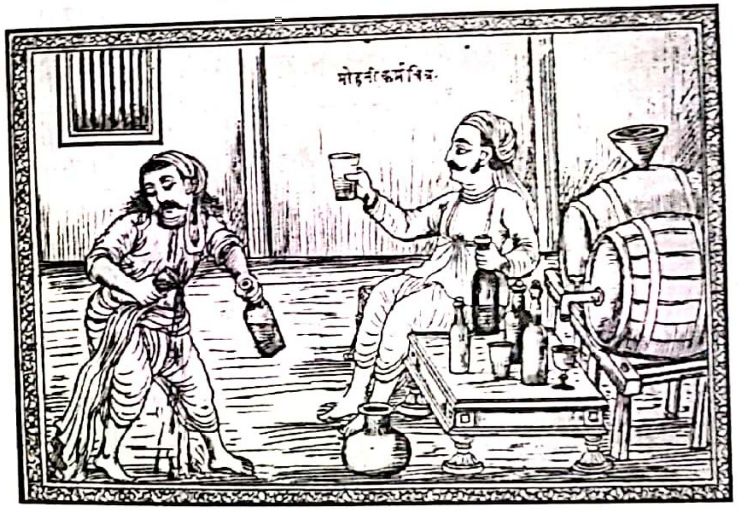

(मोहनीय कर्म का चित्र)

अनंत सुख पर आवरण, मोहनीय है नाम,
मोहनीय क्षय से किया, अनंत सुख का पान।
सिद्धों का गुण है महा, ध्याओ चेतनराज,
तुम भी पा सकते वही, अतुल सुखों का राज॥

"अनंत-सुख : जीवन को सुखी बनाओ"

भव्य मनीषियों ! 'अष्टाह्निका पर्व' की पावन पुनीत बेला में आज हम 'सिद्धचक्र महामण्डल विधान' के माध्यम से सिद्धार्चना कर रहे हैं। सिद्धों के आठ गुणों में एक गुण अनंत सुख है। वह गुण मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है। उसके विषय में आचार्य पूज्यपाद स्वामी 'सिद्ध भक्ति' में कहते हैं–

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद् वीतबाधं विशालम्।
वृद्धिहासव्यपेतं, विषयविरहितं निःप्रतिद्वन्द्वभावम्॥
अन्यद्रव्यानपेक्षं, निरूपमममितं शाश्वतं सर्वकालम्।
उत्कृष्टानन्तसारं, परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम्॥7॥

अर्थात् क्षुधा आदि भयंकर दुःखों के अभाव से उन सिद्ध परमेष्ठियों के अनंत सुख उत्पन्न हुआ है। वह आत्मा की उपादान शक्ति से अथवा आत्मा से ही उत्पन्न है। वह सुख सहज, स्वाभाविक अतिशयवान है। संसारी जीवों का सुख पुण्य कर्म रूप अंतरंग कारण वह बाह्य में भोग-उपभोग की सामग्री की अपेक्षा रखता है। उनका वह सुख अंतराय कर्म का क्षयोपशम या साता वेदनीय की अपेक्षा से उत्पन्न होता है इसलिए क्षणिक होता है, वह सुख नहीं सुखाभास मात्र है। सिद्धों का सुख ही शाश्वत व वास्तविक है। **'वीतबाधं'** अर्थात् सिद्धों का सुख बाधा से रहित है जबकि इन्द्रिय सुखों में निरन्तर बाधा रहती है। जब गर्मी का मौसम हो तो आपको ठण्डक अच्छी लगती है। आप पंखा, कूलर, ए.सी., का प्रयोग करते हैं, परन्तु जब ऋतु शीत हो तो वही कूलर वही ए.सी. दुःख का हेतु बन जाता है। ठंडी के दिनों में पंखा का स्विच यदि धोखे से on हो जाए तो आप कहते हैं जल्दी बन्द करो। कूलर, पंखा तो वही है परन्तु जो पहले सुख दे रहा है वह अब दुःख देता है। तात्पर्य सुख स्थायी नहीं वह क्षणक्षयी है, निरन्तर बदलता रहता है। वही वस्तु क्षणभर में दुःखदायी हो जाती है जो पूर्ववर्ती क्षणों में सुख दे रही थी। परन्तु सिद्धों का सुख निर्बाध/अव्याबाध सम्पूर्ण बाधाओं से रहित है। वह सुख आत्मा के

समस्त प्रदेशों में व्याप्त होकर रहता है। सिद्धों का सुख इच्छा रहित होने से न कभी घटता है और न कभी बढ़ता है। सदा काल, अनंत काल तक एक-सा ही बना रहता है जबकि संसारी जीवों का इन्द्रियजन्य सुख कभी घटता है, कभी बढ़ता है। सुख के बाद दुःख व दुःख के बाद सुख की पुनरावृत्ति होती रहती है। संसारी जीवों का सुख, दुःख मिश्रित होने से वास्तविक नहीं है। संसारी जीवों का सुख स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द रूप पंचेन्द्रियों के पराधीन होता है। परन्तु सिद्ध भगवन्तों का सुख इन्द्रिय-विषयों से रहित/स्वाभाविक है। संसारी जीवों के सुख का विपक्षी दुःख सदा लगा रहता है; पर सिद्धों का सुख सदा सुख रूप ही है, उसका कोई प्रतिपक्षी नहीं है।

संसारी जीवों का सुख सातावेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त भोजन पानी, पुष्पमाला, चंदन, सुगंधित द्रव्य आदि की अपेक्षा रखता है। अर्थात् परसापेक्षी है। सिद्ध भगवन्तों के वह सुख सहज है, अन्य द्रव्यों की अपेक्षा से रहित है।

उपमा से रहित, प्रमाण से रहित, चिरकाल स्थायी, सदा काल पाया जाने वाला इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि के सुखों से भी विशेष, उत्कृष्ट सुख सिद्ध परमेष्ठियों का होता है। वह संसारी जीवों के क्षणिक सुख से अत्यन्त विलक्षण आत्मसापेक्षी है।

वह सिद्धों का अनंत सुख कहाँ से उत्पन्न होता है। तो आठ कर्मों में से मोहनीय कर्म जो कि कर्मों का राजा कहलाता है। जब मोहनीय कर्म का क्षय होता है। तो क्षायिक/अनंत सुख उत्पन्न होता है। परन्तु संसारी अवस्था में मोहनीय कर्म का क्षय संभव नहीं है। मात्र उपशम व क्षयोपशम ही संभव है। मोहनीय कर्म के मुख्य रूप से दो भेद होते हैं- (1) दर्शन मोहनीय, (2) चारित्र मोहनीय।

दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियाँ मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक् प्रकृति व चारित्रमोहनीय की अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ- इन सात प्रकृतियों के उपशम से औपशमिक सम्यग्दर्शन, क्षयोपशम से क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन व क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है।

चारित्रमोहनीय के 25 भेद हैं-

(1) अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ

(2) अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध, मान, माया, लोभ

(3) प्रत्याख्यानावरणी क्रोध, मान, माया, लोभ

(4) संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ

4ह्न4=16+9 नोकषाय (हास्यादि 9) = 25 कषायें होती हैं।

दर्शनमोहनीय की 3 व चारित्रमोहनीय की 4 अनंताचतुष्क = 7

अनादि मिथ्यादृष्टि 4 कषाय + 1 मिथ्यात्व-5 प्रकृति

सादि मिथ्यादृष्टि 4 कषाय + दर्शन मोह-3=7 प्रकृति

के उपशम से औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। जीवन में इनसे श्रद्धा जगती है। श्रद्धा को ढँकने वाले आत्मा पद+7 कपाट थे। उन 7 कपाटों को खोलने वाला सम्यग्दर्शन होता है। भगवान के दर्शन अलग बात हैं और श्रद्धा अलग बात है। भगवान के दर्शन करने वाला हर जीव सम्यग्दृष्टि है सो बात नहीं, परन्तु सम्यग्दृष्टि के हृदय में भगवान अवश्य ही रहते हैं। उसके अंतरमन में परमात्मा अवतीर्ण हो चुके हैं। हनुमान की तरह हृदय मत चीर देना, क्योंकि उसने चीरा था तो राम मिले थे, आप चीरोगे तो गड़बड़ हो जायेगी। क्योंकि देव, शास्त्र, गुरु आपके हृदय में श्रद्धा के देवता के रूप में विराजमान रहते हैं। पौद्‌गलिक नेत्रों से श्रद्धा के देव नहीं दिखते। चर्म चक्षु से पुद्‌गल ही दिखता है परन्तु अंतर नेत्रों से श्रद्धा की आँखों में परमात्मा दिखते हैं। आप आँखें बंद करेंगे तो किसी को मोबाईल, किसी को टी.वी., किसी को बीबी, किसी को बच्चे, किसी को सब्जी दिखेगी।

परन्तु श्रद्धालु को मात्र अपने इष्ट आराध्य/परमात्मा दिखते हैं। द्रोणाचार्य अपने शिष्यों को धनुर्विद्या का अभ्यास करा रहे थे। एक वृक्ष में एक काली मिर्च लगायी और क्रम-क्रम से एक-एक शिष्यों को निशाना लगाने खड़ा किया। पहला नं. सहदेव का था। निशाना लगाने के पूर्व सहदेव ! कहो तुम्हें क्या-क्या दिख रहा है ? सहदेव बोले- वृक्ष, पत्ते, पर्वत, गुरुजी आप भी सब दिख रहे हैं। गुरुदेव ने कहा-सहदेव बैठ जाइये। नकुल का नं. आया, गुरुजी ने प्रश्न दोहराया। गुरुजी ! वह तालाब, पर्वत सब दिख रहा है। भीम से पूछा-तो वे बोले वृक्ष, धागा, धनुषबाण, काली मिर्च दिख रही है। युधिष्ठिर से पूछा तो वे बोले-मुझे गुरु चरण दिख रहे हैं। नंबर आया अर्जुन का-पुनः वही प्रश्न, तुम्हें क्या दिख रहा है ? अर्जुन बोले-गुरुजी ! मुझे मात्र काली मिर्च दिख रही है। अर्जुन तुम सफल हुए।

बस, ठीक इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को मात्र अपना लक्ष्य दिखता है। व्यवहार दशा में देव, शास्त्र, गुरु, 7 तत्त्व, 9 पदार्थ, पंचास्तिकाय दिखते हैं। निश्चय की दशा में एकमात्र आत्मा दिखती है।

अर्जुन को न गुरु दिखे, न भाई-बंधु, मात्र काली मिर्च ही दिख रही थी। सम्यग्दृष्टि जीव कुटुम्ब, परिवार के बीच रहता है परन्तु उनमें रचता-पचता नहीं। दौलतरामजी कहते हैं-

गेही पे गृह में न रचे ज्यों जल तें भिन्न कमल है।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥

सम्यग्दृष्टि घर, कुटुम्बियों से वैसे ही अलिप्त रहता है जैसे-

(1) कीचड़ में पड़ा सुवर्ण, कीचड़ से पृथक् रहता है।

(2) वेश्या के प्यार की तरह होता है। जैसे वेश्या व्यक्ति से नहीं, धन से प्रीति करती है; वैसे ही सम्यग्दृष्टि अपनी आत्मा से प्रीति करता है, कुटुम्बियों से नहीं।

(3) जैसे कमल जल से अलिप्त रहता है। यदि कमल जल से लिप्त हो तो सड़ जायेगा। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि घर में तो रहता है परन्तु अलिप्त रहता है।

भरत चक्रवर्ती के विषय में उल्लेख मिलता है कि वे घर में रहकर भी वैरागी थे। एक बार एक श्रेष्ठी के मन में विचार आया, मैं भरत चक्रवर्ती के

वैराग्य को देखना चाहता हूँ। वे पहुँच गये भरत चक्रवर्ती के पास। पूछा- षट्खंडाधिपति ! आपके वैराग्य की प्रशंसा सुनकर आपके पास आया हूँ। परन्तु-

दोई काम न होत सयाने, विषय भोग अरु मोक्ष पयाने॥

राग के साथ दिमाग का संबंध कैसा ?

भरत चक्रवर्ती बोले- सेठजी ! आपके प्रश्न का उत्तर अवश्य दूँगा। पहले मेरी आज्ञा-पालन कीजिए। यह तेल से भरा दीपक हाथ में लेकर आपको हमारा पूरा राजमहल घूमना है और ध्यान रहे कि तेल की एक बूंद भी नीचे नहीं गिरना चाहिए। यदि तेल की एक बूँद भी नीचे गिरी तो सिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा। सेठजी के हाथ में दीपक लिया और चल दिये राजमहल घूमने, चलते-चलते रानियों के रनवास पड़े, भरत चक्रवर्ती का शयन, स्नानगृह, ध्यानकक्ष आदि सब कुछ पड़ा, परन्तु सेठ जी की निगाहें तो मात्र दीपक पर टिकी थी। जब सारा राजमहल घूमकर सेठ जी वापस आये तो भरत चक्रवर्ती ने पूछा- कहिये सेठ जी ! राजमहल घूम लिया। सेठ जी बोले- महाराज, पहले यह दीपक हाथ से उठाइए, फिर बात करता हूँ। जैसे ही दीपक नीचे उतारा गया, सेठ जी ने राहत की सांस ली। फिर बोले- महाराज ! आपका पूरा महल घूम लिया। चक्रवर्ती बोले- आपने क्या-क्या देखा ? सेठजी बोले- वह मत पूछिये क्योंकि पूरे राजमहल को मैंने अवश्य घूमा, परन्तु मेरी दृष्टि तो इस दीपक पर थी। क्योंकि दीपक में मुझे मेरी मौत नजर आ रही थी। भरत चक्रवर्ती बोले- बस ! बस !! सेठ जी ! जैसे आपको दीपक में मौत नजर आ रही थी वैसे ही मुझे इस असार संसार में अपनी आत्मा नजर आती है, आत्मा के गुण नजर आते हैं, इसलिए 96000 रानियों व षट्खंड का संचालन करते हुए भी मुझे उनमें आसक्ति नहीं, अपितु आत्मा के गुणों में अनुराग है।

सेठजी सब कुछ समझ गये। बस इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि सब कुछ काम करता हुआ भी अपनी आत्मा का ध्यान रखता है। जितनी रुचि तुम्हें

business व बच्चों पर होती है, उतनी रुचि सम्यग्दृष्टि को आत्मा पर होती है। मिथ्यादृष्टि को कुटुम्बी आदि परद्रव्य ही दिखते हैं, सम्यग्दृष्टि को आत्महित ही दिखता है इसलिए आत्महितार्थ सतत प्रयत्नशील रहता है। संतों का नगरागमन हो तो प्यासे की तरह दौड़ता है कि मेरा प्रवचन न छूट जाए, गुरुओं का आहार, वैय्यावृत्ति न छूट जाए।

यूँ तो सम्यग्दृष्टि अपने आप को सब कह देते हैं, परन्तु सम्यग्दृष्टि होना अलग बात है।

बिना सम्यग्दर्शन के सुख-शांति के रास्ते नहीं खुलते। जीवन कोरे-कागज की तरह है, कितने भी ऊँचे महल बना लो, कार, बिल्डिंग बना लो, परन्तु बिना सम्यग्दर्शन के सब व्यर्थ है। बैंक में balance न हो तो मिलेगा क्या ? जो व्यक्ति श्रद्धा-विहीन है वह जीरो की तरह मूल्य विहीन है। जिसके जीवन में सम्यग्दर्शन रूपी 1 लिख गया है उस 1 के अंक के आगे जितने भी जीरो लगाओगे वे सब जीरो हीरो बन जायेंगे। अर्थात् सम्यग्दर्शन के साथ लगाये व्रत, नियम, संयम के जीरो मूल्यवान हो जाते हैं।

भगवान महावीर कहते हैं- अपनी अस्थियाँ बिखरने के पहले सम्यक् आस्था को जगा लीजिए। हम दुनियाँ भर पर विश्वास कर लेते हैं। हमें विश्वास है कि ये छत नहीं गिरेगी इसलिए उसके नीचे बैठे हैं। जमीन पर बैठे तो वह खिसकेगी नहीं, ऐसा विश्वास है। प्यासे को पानी पर, भूखे को भोजन पर विश्वास है, हम सारे पौद्गलिक पदार्थों पर विश्वास करते हैं, परन्तु अपनी आत्मा पर विश्वास नहीं कर पाते।

336 देवों पर हिन्दुओं का विश्वास है, 24 पैगम्बरों पर मुस्लिमों का विश्वास है, 24 तीर्थंकरों पर जैनों का विश्वास है, परन्तु 7 अंधों की तरह हमें अपने आप पर विश्वास नहीं। 7 भाई सैर करने गये लौटे तो गिनती की परन्तु गिनने वाले ने 6 ही गिने। वे बहुत रोये। हमारा1 भाई खो गया, माता-पिता को क्या मुख दिखायेंगे ? 1 क्या रोया, सबके सब रोने लगे। तभी वहाँ से एक निर्ग्रंथ गुरु निकले, पूछा-क्या बात है, तुम क्यों रोते हो? वे बोले-

नमोऽस्तु महाराज ! हम बड़े दुःखी हैं। दुःख का कारण ? महाराज ! हम 7 आये, 6 बचे, 1 भाई का पता नहीं। महाराज ने कहा–तुम गिनती गिनो, फिर से गिना 1, 2, 3, 4, 5, 6 महाराज ने कहा– तुमने अपने आप को तो गिना नहीं। वे अपनी मूर्खता पर हँसने लगे।

हमारी गिनती भी उन मूर्खों में ही है, क्योंकि हम भी सारे कुटुम्ब-कबीले की पूरी रिपोर्ट रखते हैं परन्तु अपनी आत्मा की खबर नहीं।

पर पदार्थों का परिचय पाया परन्तु अपना परिचय नहीं पाया।

सिद्धों के आठ गुणों में से एक अनंत सुख है, उस अनंत सुख की प्राप्ति तब होती है जब मोहनीय कर्म क्षय को प्राप्त हो जाता है। पर पदार्थों को देखना ही अपराध है। पर पदार्थों में दुःख ही दुःख है अतः पर द्रव्यों को नहीं अपनी आत्मा को निहारिये। अपने आप को जिन्होंने देख लिया है वे सिद्ध परमेष्ठी हैं– निज को देखा, निज को जाना, निज को ही पा लिया है। ऐसे आत्मान्वेषी सिद्धों की अर्चना आज हम अपने स्वरूप को जानने हेतु कर रहे हैं।

मोहनीय कर्म के क्षय से ही आत्मा में अनंत सुख गुण उत्पन्न होता है। परन्तु मोहनीय कर्म का जब उदय चलता है तो उस अनंत सुख में बाधा खड़ी हो जाती है। वह मोहनीय कर्म दो भेद वाला है–

(1) दर्शन मोहनीय, (2) चारित्र मोहनीय।

इन दोनों के आस्रव के हेतुओं को बतलाते हुए आचार्य श्री उमास्वामी महाराज अपने 'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रंथ में कहते हैं–

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य॥13॥

केवली, श्रुत, संघ, धर्म व देव का अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म के आस्रव का कारण है।

अवर्णवाद– गुणवान पुरुष में जो दोष नहीं हैं उनकी उनमें उद्भावना करना अवर्णवाद है।

केवलि-अवर्णवाद– जिनका ज्ञान आवरण रहित है वे केवली कहलाते हैं। केवली भगवान के कवलाहार नहीं होता परन्तु केवली तो कवलाहार (ग्रासाहार) से जीते हैं– ऐसा कहना केवली भगवन्तों का अवर्णवाद है।

श्रुत का अवर्णवाद– केवली भगवन्तों के उपदेशों को स्मरण कर गणधरदेव जो ग्रंथों की रचना करते हैं वह श्रुत कहलाता है। श्रुत में मांस खाना सर्वथा निषेध ही कहा है, परन्तु शास्त्र में मांस भक्षण आदि को निर्दोष कहा है, इत्यादि रूप से कथन करना श्रुत का अवर्णवाद है।

संघ का अवर्णवाद– रत्नत्रय से युक्त श्रमणों का समुदाय संघ कहलाता है। ये साधु संघ अपने आचरण से निर्मल व पवित्र होते हैं। इन साधुओं को देख ये शूद्र हैं, अपवित्र हैं, अशुचि हैं, नहाते नहीं हैं, इसलिए अपवित्र हैं आदि कहकर इनका अपवाद करना संघ का अवर्णवाद है।

धर्म का अवर्णवाद– सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित आगम में उपदिष्ट अहिंसा ही धर्म है। जिनदेव द्वारा कथित धर्म में कोई सार नहीं है, जो इसका सेवन करते हैं वे असुर होंगे – ऐसा कहना धर्म का अवर्णवाद है।

देव का अवर्णवाद– देवगति के चार निकाय के देव, देव कहलाते हैं। इन देवों का मानसिक आहार होता है। जितने वर्ष की आयु हो उतने हजार वर्ष बाद उनके कण्ठ में अमृत झर जाता है। ऐसे देवों को ये 'सुरा' और 'मांस' का सेवन करते हैं– ऐसा कहना देवों का अवर्णवाद है।

आगे चारित्र मोहनीय कर्म के आस्रव के हेतुओं को बतलाते हुए आचार्य महाराज कहते हैं–"**कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्र मोहस्य॥14॥**" कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्म परिणाम चारित्र मोहनीय कर्म के आस्रव का हेतु है।

कषाय– जो आत्मा को कसती है अथवा आत्मा के सम्यग्दर्शनादि गुणों का घात करती है, वह कषाय है। चारित्र मोहनीय के दो भेद हैं :–

(1) कषाय वेदनीय, (2) अकषाय वेदनीय।

कषाय वेदनीय के आस्रव के कारण :- स्वयं कषाय करना, दूसरों में कषाय उत्पन्न कराना, तपस्वी जनों के चारित्र में दूषण लगाना, संक्लेश को पैदा करने वाले लिंग और व्रत को धारण करना आदि कषाय वेदनीय कर्म के आस्रव के हेतु हैं।

अकषाय वेदनीय :- किंचित् कषाय को अकषाय या नोकषाय वेदनीय कहते हैं- हास्य, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

हास्य वेदनीय के आस्रव के हेतु :- सत्य धर्म का उपहास करना, दीन की हँसी उड़ाना, कुत्सित राग को बढ़ाने वाली हँसी-मजाक करना, बहुत बकवास करना, हँसने की आदत, बात-बात में हँसते ही रहना आदि हास्य वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं।

रति वेदनीय के आस्रव के हेतु :- नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में लगे रहना, व्रत और शील के पालन करने में रुचि न रखना आदि परिणामों से रति वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

अरति वेदनीय के आस्रव का हेतु :- दूसरों में अरति उत्पन्न हो, रति का विनाश हो ऐसी प्रवृत्ति करना और पापी की संगति करना आदि परिणामों से अरति वेदनीय का आस्रव होता है।

शोक कर्म के आस्रव का हेतु :- स्वयं शोकातुर होना, दूसरों के शोक को बढ़ाना तथा ऐसे मनुष्यों का अभिनन्दन करना आदि परिणामों से शोक कर्म का आस्रव होता है।

भय कर्म के आस्रव का हेतु :- स्वयं भयभीत रहना व दूसरों में भय पैदा करना भय कर्म के आस्रव का हेतु है।

जुगुप्सा कर्म के आस्रव के हेतु :- सुखकर क्रिया और सुखकर आचार से घृणा करना और अपवाद करने में रुचि रखना, रत्नत्रयधारियों में ग्लानि रखना जुगुप्सा कर्म के आस्रव के हेतु हैं।

स्त्रीवेद के आस्रव के हेतु :- असत्य बोलने की आदत, अतिसंधान

परता, दूसरे के छिद्र ढूँढ़ना, छल-कपट करना तथा बढ़ा हुआ राग रूप परिणाम स्त्रीवेद के आस्रव का हेतु है।

पुरुषवेद के आस्रव के हेतु :- क्रोध का अल्प होना, ईर्ष्या नहीं करना, अपनी स्त्री में संतोष करना आदि पुरुषवेद के आस्रव के परिणाम हैं।

नंपुसक वेद के आस्रव के हेतु :- प्रचुर मात्रा में कषाय करना, गुप्तेन्द्रियों का विनाश करना, परस्त्री से बलात्कार करना, व्रतशीलधारी पुरुषों का तिरस्कार करना आदि नपुंसक वेद के आस्रव के कारण हैं।

इस प्रकार मोहनीय कर्म के आस्रव के हेतुओं को जान हमें उनसे बचने का प्रयत्न/प्रयास करते ही रहना चाहिए। इन हेतुओं से बचते हुए जो आत्महित के पथ का अनुगमन करता है। वही आठों कर्मों का क्षय कर एक दिन परम सिद्धावस्था को प्राप्त करता है। उनकी परम सिद्धात्माओं को अपना आदर्श बनाकर हम सिद्धार्चना में संलग्न हैं।

हमारी यह सिद्धार्चना सतत 8 दिन तक प्रवाहित होती रहेगी। उन पूज्य अनंत सिद्धों के गुणों को जान हम अपनी आत्मा को जानें व उसे पाने का प्रयत्न करें। तभी हमारी सिद्धार्चना सार्थक होगी।

इसी भावना के साथ...

॥ 1008 महावीर भगवान की जय॥

यतोऽनन्तगुणानां स्यादनन्तांशोऽपि कस्यचित्।
ततो न शक्यते कर्तुं तेन साम्यं जगत्त्रये॥77॥
(ज्ञाना.)

अर्थ- क्योंकि तीनों जगत में उन सिद्ध परमेष्ठी के अनन्त गुणों का अनन्तवाँ अंश भी किसी पदार्थ में नहीं है, इसलिये उनकी समानता किसी के साथ नहीं कर सकते।

बलशाली बन जाओ

अनंतवीर्य गुणयुक्त सिद्ध भगवान

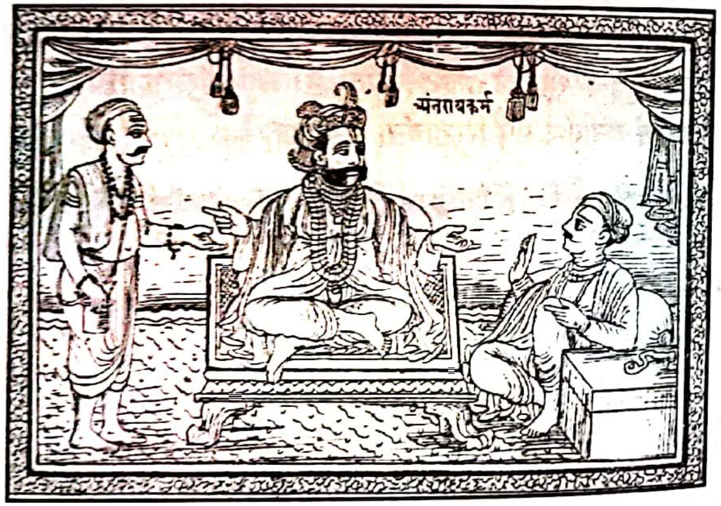

(अंतराय कर्म का चित्र)

अनंत बल पर आवरण, अंतराय है नाम,
अंतराय का क्षय किया, अनंत वीरजवान।
सिद्धों का गुण है महा, ध्याओ चेतनराज,
तुम भी पा सकते वही, अतुल सुखों का राज॥

''अनंत-वीर्य : बलशाली बन जाओ''

बंधुओ ! अष्टाह्निका पर्व का आज पुनीत दिवस है। सिद्धाष्ट गुण प्रवचनमाला के माध्यम से हम सिद्धों के चतुर्थ गुण 'अनंत वीर्य' को समझ रहे हैं। विश्व के प्रत्येक प्राणी सिद्धार्चना करते हैं। वे ही सिद्ध बन पाते हैं जो सिद्धों को पूजते हैं, अरहंत भी गृहस्थावस्था में मात्र सिद्धों का स्मरण करते हैं। वैराग्य होते ही 'नमः सिद्धेभ्यः' बोल सम्पूर्ण वस्त्राभूषण परिग्रहों का त्याग कर देते हैं।

सिद्ध परमेष्ठी सबसे बड़े हैं क्योंकि घातिया+अघातिया 8 कर्मों का क्षय कर स्वात्मोपलब्धि प्राप्त की है। सिद्धभक्ति में आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं –

जय मंगलभूदाणं विमलाणं णाणदंसणमयाणं।
तियलोयसेहिराणं णमो सया सव्वसिद्धाणं॥

सर्वप्रथम आचार्यश्री ने 'जय' शब्द रखा है। 'जय' शब्द को अन्य आगमों से उद्धृत किया है– ऐसा भी कहा जाता है परन्तु आचार्य कुन्दकुन्द देव के प्राचीन साहित्य में 'जय' शब्द का प्रयोग किया गया है। जय, विजय का प्रतीक है। महापुरुषों आदि की जय बोली जाती है। आचार्य वीरसेन महाराज ने 'धवला जी' में 'जय' शब्द को मंगल के रूप में लिया है।

तीर्थंकरों के प्रथम आहार होने पर जब पंचाश्चर्य होता है तो **'जयघोष'** नामक एक आश्चर्य प्रकट होता है। सिद्ध परमेष्ठी सर्वोत्तम है। **'सिद्धा मंगलं'** अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी मंगलभूत है। **'मं पापं गालयति मंगलं'** आत्मा में स्थित अनादि के पापों को जो गलाये वह मंगल है। सम्यग्दृष्टि सिद्धों को मंगलभूत मानता है इसलिए सिद्धों के स्मरणपूर्वक हर कार्य का शुभारंभ करता है।

'मंगं सुखं लाति मंगलं' जो जीवन में सुख लाये वह मंगल है।

मंत्रोच्चारणपूर्वक जिनका नाम लिया जाता है उनमें सर्वोत्तम परमेष्ठी सिद्ध हैं। सिद्ध मंगल हैं तो उनका नाम हमारे लिए भी मंगलकारी होगा। स्वाध्याय के पूर्व मंगलाचरण करते हैं, ग्रंथ लिखने के पूर्व, प्रवचन, भजन आदि के पूर्व मंगल किया जाता है।

नास्तिकतापरिहारस्तु, शिष्टाचारप्रपालनम्।
पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नं, शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः।।

(1) नास्तिकता परिहारस्तु :– जो आस्तिक नहीं है वह नास्तिक है। जो स्वर्ग–नरक, मोक्ष–संसार, इहलोक, परलोक, ईश्वर को न माने वह नास्तिक है। जो प्रभु स्मरण करता है वह आस्तिक है। आस्तिक ही प्रभु को मानता है। मंगलाचरण करने वाला अपने इष्ट का नाम लेता है। जिसकी जिसके प्रति श्रद्धा है वह उसे स्मरण करता है। स्मरण करने वाला आस्तिक है। मंगलाचरण करने वाले की नास्तिकता का परिहार होता है और वह आस्तिक हो जाता है।

(2) शिष्टाचार प्रपालनम् :– 'सुष्ठु जनः आचारः शिष्टाचारः' श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा किया गया आचरण ही शिष्टाचार है। मन, वचन, काय का योग्य आचरण शिष्टाचार है। वे कार्य करने के पूर्व विचारते हैं, विवेक से काम करते हैं। करने योग्य को करूँगा, न करने योग्य को नहीं करूँगा। जो योग्यायोग्य को विचारता है वही शिष्टाचारी है। जो बोलने लायक हो उसे बोलता है न बोलने योग्य को नहीं बोलता। वही सोचता है जो सोचने योग्य हो, व्यर्थ की बातें नहीं सोचता।

अच्छे वचन, अच्छा मन व अच्छा आचारवान ही सत्पुरुष है। सत्पुरुषों के द्वारा किया गया आचरण शिष्टाचार है। शिष्ट पुरुष कोई कार्य शुभारम्भ करने के पूर्व गुरुजनों से अनुमति लेते हैं। देवाज्ञा या गुर्वाज्ञा पूर्वक कार्य करना शिष्टाचार है। अनुमति पूर्व में लेना। कार्य करने के बाद बताना उतना श्रेष्ठ नहीं क्योंकि उस दिशा में गुरु की अनुमति न हो तो गड़बड़ हो जायेगी।

शिष्य गुरु से पृच्छा–प्रतिपृच्छा करता है। यह 10 समाचार विधि में से 2 है। पृच्छा यानि पूछकर कार्य करने। प्रतिपृच्छा यानि बार–बार पूछना, बार–बार क्यों पूछना ? इसलिए 10 की जगह 1 समाचार विधि होना चाहिए। बड़े आचार्य भूल नहीं करते इसलिए 10 ही सही है। School में भी बच्चे Teacher से पूछकर कमरे में आते हैं 'May I come in sir, Sir 'yes' बोले तो आ सकते हैं। पूछकर काम करना शिष्टता है। पैन किसे देना है, पुस्तक पूछकर दी जाती है, वह पृच्छा है। प्रतिपृच्छा– बार–बार पूछना। आप जिस समय पूछने गये आपके गुरुदेव किसी कार्य में लगे हो और न सुन पाये तो पुनः–पुनः पूछना चाहिए। यह सब शिष्टाचार है। गुरु प्रत्यक्ष में तो नहीं है फिर शिष्टाचार का पालन कैसे हो ? कार्य के पूर्व गुरु या देव को स्मरण करना, नमस्कार करना यह शिष्टता है। मंगलाचरण करने से भी शिष्टाचार का पालन होता है। जो स्वयं शिष्टाचारी न हो वह यह कहेगा कि छोटी–छोटी बातों को क्या पूछना ? शिष्टाचारी कहेगा– बात छोटी हो या बड़ी सब पूछकर करना चाहिए। शब्द व्यक्ति के व्यक्तित्व के परिचायक हैं। मंगलाचरण आपकी शिष्टता दिखाता है।

(3) पुण्यावाप्तिश्च :– मंगलाचरण करने से पुण्य होता है, शिष्ट पुरुष गुरु से पृच्छा करते हैं। **'स्वबुद्धि सुखस्यैव, गुरुबुद्धि विशेषता'।** यदि गुरु ने मनाकर दिया तो वह कार्य नहीं करना चाहिए। क्योंकि गुरु की बुद्धि विशेष है, उनके पास अनुभव है, ज्ञान है। वे जो कहेंगे वह हमारे लिए हितकारी होगा, अतः पूछने से पुण्य की प्राप्ति होती है। गुरु ने आपको कहा– उस रास्ते नहीं जाना, वहाँ काँटे थे, आप उससे बच गये यानि पुण्य की प्राप्ति होती है। कुछ लोग कदम–कदम पर पुण्य का संग्रह करते हैं, क्योंकि वे अपने कार्य करने के पूर्व अपने इष्ट का स्मरण करते हैं।

(4) ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति :– प्रारम्भ किया ग्रंथ मंगलाचरण से निर्विघ्न सम्पन्न होता है। **'जय मंगलभूदाणं'** जितने भी संसार के भूत हैं यानि संसारी प्राणी हैं उनका मंगल करने वाले सिद्ध परमेष्ठी भगवान होते हैं।

वे निर्मल होते हैं अर्थात् सम्पूर्ण कर्म मल से रहित हैं, अनंतदर्शनादि से युक्त हैं। तीन लोक के सिर पर सेहरे की तरह जो शोभा पाते हैं, उनकी सदा जय हो, उन सम्पूर्ण सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ। उन सिद्ध परमेष्ठियों का हम स्मरण कर रहे हैं। सिद्धों के 8 गुणों में से 4 गुण घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न होते हैं। अंतराय कर्म के क्षय से अनंत वीर्य की प्राप्ति होती है। अंतराय कर्म को खजांची की उपमा दी जाती है। खजांची खजाने से वस्तु नहीं निकालने देता वैसे ही अंतराय कर्म है **''विघ्नकरणमंतरायस्य''** दानादि कार्यों में विघ्न करने से अंतराय कर्म का आस्रव होता है। अंतराय कर्म के क्षय से अनंत वीर्य होता है तथा पाँच भेद गिनाये हैं :-

(1) दान, (2) लाभ, (3) भोग, (4) उपभोग, (5) वीर्य।

लोग कहते हैं- वीर्यान्तराय कर्म मात्र के क्षय से अनंत वीर्य उत्पन्न होता है परन्तु पाँचों अंतरायों के क्षय से अनंत शक्ति उत्पन्न होती है। अंतराय कर्म के पाँच भेद हैं :-

(1) दानान्तराय कर्म, (2) लाभान्तराय, (3) भोगान्तराय, (4) उपभोगान्तराय, (5) वीर्यान्तराय।

(1) दानान्तराय कर्म :- एक व्यक्ति जो दान देना चाहता है, परन्तु चाहकर भी दे नहीं पाता, बीच में ही विघ्न खड़ा हो जाता है। दान देने की भावना से प्रातःकाल सुबह 4 बजे से उठकर श्रावक तन, मन, धन से जुट जाता है। परिश्रम से आहार सामग्री तैयार करता है। कई पकवान बनाता है और उत्तम, मध्यम, जघन्य आदि पात्रों को आहार देने हेतु तैयार हो जाता है। ग्रास भी हाथ पर रख देता है परन्तु क्या हो गया ? बालचंद जी आगे गये। अब आप दान देना चाहो तो भी नहीं दे सकते। इसी का नाम दानान्तराय कर्म है जो कि दान में विघ्न डालता है।

(2) लाभान्तराय कर्म :- मुनि, आर्यिका आदि पात्र आपके घर नवधा भक्ति से चौके में आ गये, पाटे पर विराज गये, आहार भी प्रारम्भ हो

गया परन्तु बीच में ही हो रहे आहार के लाभ में ब्रेक लग गया क्योंकि बालचंद अथवा जीवराज जी आ गये। यही लाभान्तराय कर्म है। होते हुए लाभ में जो विघ्न उपस्थित कर दे अर्थात् लाभ न होने दे वह लाभान्तराय कर्म है।

(3) भोगान्तराय कर्म :- भोग का अर्थ है जो एक बार भोगने में आये वह भोग है। जैसे भोजन, पानी, इत्र, फुलेल आदि। भोग की सामग्रियों में जो विघ्न डाल दे वह भोगान्तराय कर्म है। चाहते थे भोग की सामग्री प्राप्त हो, परन्तु उसमें ब्रेक लग जाये तो समझो भोगान्तराय कर्म का उदय है।

एक बार अपने पापा की इकलौती लाड़ली बिटिया अपने जन्म दिवस पर पापा से बोली- पापा, आज मेरा बर्थ डे (Birth Day) है, इसलिए मुझे आज आप आइस्क्रीम बार ले चलिये। वॉडीलाल, वेनीला आदि-आदि आइस्क्रीम खाऊँगी। उसके घर के पास ही एक फेमस आइस्क्रीम बार था। पापा ने कहा- ठीक है बेटा, तेरी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा। बेटी ने नये-नये सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने, सज-धज कर पूरी गुड़िया बन गयी। पापा के साथ स्कूटर में बैठी और चल दी आइस्क्रीम बार। जैसे ही दुकान आयी, पापा ने स्कूटर रोका परन्तु बार तो बंद था। आजू-बाजू पूछा- क्या बात है, बार बंद क्यों है ? मालूम चला बार वाले के यहाँ शादी है इसलिए दो दिन तक दुकान बंद रहेगी। वह बच्ची कुछ दुःखी हुई। पापा तो भाँप गये कि गुड़िया के चेहरे पर 12 बज रहे हैं। अतः पापा बोले-बेटा ये दुकान बंद है तो कोई बात नहीं, हम दूसरी पर चलते हैं। कुछ आशा की किरण जगी। जल्दी से खुश होकर पुनः स्कूटर पर बैठ गई। नई दुकान पर पहुँचे तो देखा, दुकान खुली है, गुड़िया खुश हो गई। पापा भी खुश थे। दोनों दुकान में गये परन्तु दुकान वाला गुड़िया के पापा से बोला- Sir (सर) क्षमा करें लाईट न होने की वजह से आज काम ठप्प पड़ा है। आइस्क्रीम नहीं बना सका। गुड़िया का मुख-मंडल मुरझा गया। पापा के साथ वह घर वापस लौट गई। पापा ने उसे ढेर सारे खिलौने खरीद कर दे दिये। उसे खुशी हुई परन्तु आइस्क्रीम न मिलने का

दुःख था। घर वापस पहुँची तो मम्मी ने पूछा–बेटा, आइस्क्रीम खाकर आ गई। बेटी बोली–मम्मी ! एक भी जगह आइस्क्रीम नहीं मिल पायी। मम्मी बोली– बेटा, आज तेरा लाभान्तराय कर्म का उदय होगा इसलिए आइस्क्रीम नहीं मिली। मैंने तुझे कितना कहा था कि बाजार मत जा, घर पर बना देती हूँ; परन्तु तुमने मेरी एक न सुनी। बच्ची बोली–माँ, तुमने जरुर बनायी होगी। माँ बोली–हाँ, तेरे लिये बनाई थी परन्तु अभी–अभी कुछ देर पहले तेरी बुआ आई थी। तू तो थी नहीं अतः उन्हें खाने दे दी। भोग की सामग्री भोगना चाहते थे परन्तु भोग नहीं पाये यह भोगान्तराय कर्म है। बिटिया खाना चाहती थी परन्तु खा नहीं पायी।

कितने ही लोग धन, पैसे वाले होते हैं। चाहे तो रोज दूध–मलाई पई-पकवान खाये परन्तु पता चला डाईबिटीज हो गया। सामने वस्तु पड़ी है, पर भोग नहीं पा रहे, यह भोगान्तराय कर्म है। जो भोग की सामग्रियों में विघ्न खड़ा कर देता है।

(4) उपभोगान्तराय कर्म :– उपभोग का अर्थ है जो सामग्री बार–बार भोग में आये वह उपभोग है। उदाहरण– वस्त्र, बर्तन, टेबिल, कुर्सी, पेन आदि जो बार–बार उपयोग में आये वह उपभोग की वस्तु है। ऐसी उपभोग की सामग्रियों में जो विघ्न खड़ा कर दे वह उपभोगान्तराय कर्म है।

एक सेठानी जी थी, नई फैशन के कपड़े व जेवर पहनना पसन्द करती थी। जो पसन्द आये उसे खरीदकर ही रहती थी। एक बार एक जौहरी की दुकान के सामने से वे गुजर रही थी। तभी एक सुन्दर हार पर उनकी दृष्टि पड़ी। परन्तु उस समय पैसे पास में नहीं थे। सोचा घर से पैसे लाकर शाम को खरीद ले जाऊँगी। शाम को सेठ जी को लेकर सज–धज कर सेठानी जी दुकान पर पहुँची तो देखा कि हार अपने स्थान पर नहीं है। दुकानदार से पूछताछ की। दुकानदार बोले–बहिन जी ! वह तो 2 घंटे पहले बिक चुका है, आप कहें तो वैसा दूसरा दे सकता हूँ। सेठानी जी को अन्य कुछ पसन्द नहीं

आया। सेठानी जी के पास पैसा भी था, खरीदने की सामर्थ्य भी। परन्तु उपभोगान्तराय का क्षयोपशम नहीं था इसलिए वस्तु किसी और के पास चली गई।

कभी–कभी चौके में महाराज की थाली में रसगुल्ले रखे रहते हैं, जलेबियाँ रखी रहती हैं परन्तु पता चला कोई उठाकर ही ले गया। अथवा किसी ने हाथ पर भी रख दिया तो जीवराजा पधार गये। भोगना चाह रहे थे परन्तु भोग नहीं पाये यह भोगान्तराय है। कोई सुन्दर पैन है। आपको बहुत पसन्द है परन्तु चार दिन भी लिख नहीं पाये, गिर कर टूट गया तो वह उपभोगान्तराय कर्म काम कर रहा है। आप उपभोग करना चाहते हैं परन्तु कर नहीं पा रहे।

(5) वीर्यान्तराय :– जो शक्ति या बल में विघ्न डाले वह वीर्यान्तराय कर्म है। वीर्यान्तराय कर्म के उदय में व्यक्ति निर्बल रहता है। चाहकर भी विशेष तपादिक नहीं कर पाता। प्रायः देखा जाता है कि कुछ लोग सदैव बीमार ही बने रहते हैं। एक बीमारी ठीक नहीं होती कि दूसरी हो जाती है। दूसरी ठीक नहीं होती कि तीसरी हो गई। क्या कारण है ? वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं है। कभी–कभी ऐसा भी देखा जाता है, कुछ लोग लम्बे–लम्बे उपवास करते हैं फिर भी पित्त आदि का प्रकोप नहीं होता, क्योंकि उनके वीर्यान्तराय का क्षयोपशम विशेष है।

सिद्ध परमेष्ठी भगवान ने वीर्यान्तराय कर्म का क्षय कर अनंत बल गुण प्रकट कर लिया है इसलिए वे अनंत वीर्य के धारी होते हैं। यद्यपि उन्होंने समूल अंतराय का क्षय किया इसलिए उनके (1) क्षायिक दान, (2) क्षायिक लाभ, (3) क्षायिक भोग, (4) क्षायिक उपभोग, (5) क्षायिक वीर्य प्रकट हो गये हैं।

(1) क्षायिक दान :– धर्मोपदेश, दिव्यदेशना के माध्यम से प्राणीमात्र को अभय प्रदाता होने से केवलियों के क्षायिक दान है।

(2) क्षायिक भोग :- पुष्पवृष्टि, मंद सुगंध बयारि आदि अतिशय केवलियों के क्षायिक भोग के प्रतीक हैं।

(3) क्षायिक उपभोग :- समवशरण आदि अष्ट प्रातिहार्य आदि केवलियों के क्षायिक उपभोग हैं।

(4) क्षायिक लाभ :- केवलियों को स्वाभाविक आत्मिक गुण अनंत चतुष्टय की प्राप्ति होना क्षायिक लाभ है।

(5) क्षायिक वीर्य :- वीर्यान्तराय कर्म के समूल नष्ट होने से केवली अनंत बलशाली हो जाते हैं। यह उनका क्षायिक वीर्य है। सिद्धों के समस्त गुणों में अनंत वीर्य गुण सबसे महत्त्वशाली है, क्योंकि बिना शक्ति के कुछ भी नहीं होता। ज्ञानावरणी के क्षय से उत्पन्न अनंतज्ञान को झेलने के लिए व मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न अनंत सुख का उपभोग करने के लिए अनंत बल अनिवार्य है।

देखा जाता है कि जिसके पास ज्यादा शक्ति नहीं होती वह अधिक पढ़-लिख नहीं पाता। ज्यादा मेहनत कर ले तो सिरदर्द करने लगता है और शक्ति से ज्यादा पढ़ भी ले तो परेशानी है। एक बार समाचार पत्र में ऐसा पढ़ने में आया कि P.M.T/P.E.T. आदि प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने वाले एक बच्चे की सिर की नस फट गई। कारण पता किया गया तो पता चला कि वह 24 घण्टे में 22 घंटे पढ़ता था। मात्र 2 घंटे सोता था और शक्ति उसके पास उतनी नहीं थी। वह कमजोर प्रकृति का था। अधिक श्रम होने से मस्तिष्क की नस फटी और वह मरण को प्राप्त हो गया। इसलिए ज्ञान को झेलने के लिए भी शक्ति चाहिए।

कभी-कभी व्यक्तियों के पास धन-संपदा है, भोगोपभोग की सामग्रियाँ भी हैं, परन्तु 2-4 रसगुल्ले खा नहीं पाते कि दिनभर दो नंबर जाना पड़ता है, वे पचा नहीं पाते loose motion (दस्त) हो जाते हैं। कूलर, ए.सी., पंखा सब सुविधाएँ हैं परन्तु थोड़ी देर ए.सी. में बैठ ले तो सर्दी हो जाती है, कफ

बनने लगता है। सुख की सामग्रियाँ सारी हैं परन्तु शक्ति के अभाव में सुख को भोग नहीं पा रहे।

कहने का तात्पर्य है- सम्पूर्ण गुणों में अनंत वीर्य गुण का विशेष महत्त्व है। सब गुणों को झेलने का काम अनंत बल करता है।

यह सिद्धों का एक विशिष्ट गुण है, हमने सिद्धों के अनंत बल गुण को तो समझ लिया परन्तु उसे प्राप्त कैसे करें ? तो जो व्यक्ति शारीरिक बल पाकर उसका उपयोग-

(1) दूसरों की सेवा में करते हैं।

(2) उस शक्ति का दुरुपयोग न कर तपश्चरण आदि करते हैं।

(3) ब्रह्मचर्य व्रत के पालन से शक्ति का रक्षण होता है। इसीलिए 14 गुणस्थानवर्ती शैलेषी अवस्था में 18,000 शीलों के स्वामी हो जाते हैं। जितना निर्मल ब्रह्मचर्य होता है उतनी ही शक्ति/बल बढ़ता है।

(4) व्रत, नियम, संयम, उपवास आदि करने से भी वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम बढ़ता है इसके विपरीत जो व्यक्ति अपनी शक्ति को छिपाते हैं व्रत, नियम, संयम लेने से घबराते हैं उन्हें वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम प्राप्त नहीं हो पाता। जो दूसरों की सेवा वैय्यावृत्ति में प्रमाद करते हैं उनके भी वीर्य प्रकट नहीं हो पाता।

(5) जो अपनी शक्ति का उपयोग दूसरों को सताने, विषय-भोगों में करते हैं उनके वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम घट जाता है।

इसलिए यदि आपने पुण्योदय से कुछ शक्ति पायी है तो उसका रक्षण करते हुए व्रत, नियम, संयम धारण कर उसमें वृद्धि करिये तो एक दिन वह अवश्य आयेगा जबकि आप अनंत शक्ति सम्पन्न बन जायेंगे। आपके सम्पूर्ण अंतराय कर्म का क्षय होकर अनंत वीर्य गुण प्रकट होगा और आप सिद्धों के समान अनंत वीर्य के धारी होकर स्वयं सिद्धावस्था को प्राप्त कर लेंगे।

अपनी शक्ति के अनुसार व्रत, नियम, संयम धारण कर अपनी शक्ति में वृद्धि करना चाहिए। साथ ही अंतराय कर्म के आस्रव के अन्य हेतुओं से भी बचना चाहिए।

(1) दूसरों के दान में विघ्न डालने से अंतराय कर्म बँधता है। कोई व्यक्ति धर्म क्षेत्र में, किसी तीर्थ क्षेत्र में या आहार आदि के हेतु दान दे रहा है और आप कह दें- व्यर्थ पैसा क्यों खोते हो, बैंक में डाल दो तो काम आयेगा। तुम दान करोगे, मौज दूसरे उड़ायेंगे इसलिए दान मत करो। शादी ब्याह में, किटी-पार्टी में खर्च कर देना। इत्यादि प्रकार के वचन बोलकर उसके दान में विघ्न डाल देना अंतराय कर्म के आस्रव का हेतु है। कोई आहार दान दे रहा है और आप विघ्न डाल देते हैं नहीं ! मेरा चौका है तुम किनारे हटो, मैं आहार दूँगा। मेरे चौके में तुम आहार नहीं दे सकते। दूसरे के हाथ से सामग्री छीन लेना अथवा कोई वस्तु साधु आहार में ले रहे हैं। उस सामग्री को थाली से हटा देना इससे अंतराय कर्म का आस्रव होता है।

(2) किसी व्यक्ति को किसी वस्तु का लाभ हो रहा था। कोई श्रावक रसगुल्ले, रबड़ी आदि महाराज को चला रहा था परन्तु आपने लोभवश उस सामग्री को थाली से हटा दिया तो दूसरे के लाभ में विघ्न डाल दिया इससे लाभान्तराय कर्म का आस्रव होता है।

(3) भोग की सामग्रियाँ फूल माला, आहारपान में विघ्न डाल देना। कोई भोजन को बैठा और आपने सामग्री उठा ली अथवा चार बातें सुनाने लगे। इससे भोगान्तराय कर्म का आस्रव होता है।

(4) उपभोग की सामग्रियाँ, वस्त्र, बर्तन, पुस्तक, कॉपी, पैन आदि को तोड़ देना, छिपा देना आदि से उपभोगान्तराय कर्म का बंध होता है।

(5) वीर्यान्तराय दूसरे की शक्ति में विघ्न डालना। अपने पास शक्ति है, स्वयं बलशाली है तो दूसरे निर्बल प्राणियों को डराना, धमकाना, परेशान करना, कभी-कभी डाकू, गुण्डागर्दी करने वाले लोग दूसरे निर्बल लोगों से

हफ्ता माँगते हैं, सताते हैं, परेशान करते हैं, वे अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। इससे अंतराय कर्म बँधता है। इसके अलावा कर्णच्छेदन, गुह्य अंगच्छेदन, नाक काटना, दूसरों की आँख फोड़ना आदि से भी अंतराय कर्म बँधता है।

राजवार्तिक में कहा है- जो दूसरों की इन्द्रियों की क्षति करता है उससे वीर्यान्तराय कर्म वृद्धि को प्राप्त होता है। कुत्सित कार्यों से वीर्यान्तराय कर्म बँधता है। ब्रह्मचर्य व्रत वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम का प्रबल हेतु है।

14वें गुणस्थान के अंत में 18,000 शील पूर्ण होते ही जीव सिद्धावस्था को प्राप्त करता है। इसलिए शक्ति का संरक्षण करना चाहिए। जो शक्ति का संरक्षण नहीं करते वे बीमार रहते हैं। काम बिगड़ते हैं, मंत्र साहित्य में मंत्र सिद्धि हेतु ब्रह्मचर्य व्रत अनिवार्य है। जाप्यानुष्ठान वगैरह में ब्रह्मचर्य व्रत अनिवार्य है। बड़े-बड़े अनुष्ठानों में सफलता ब्रह्मचर्य से मिलती है। बल प्रायः तीन प्रकार का होता है-(1) मन बल, (2) तन बल, (3) आत्म बल।

तन बल :- शारीरिक शक्ति ही तन बल है परन्तु तन बल कम महत्त्वशाली है।

मन बल :- यह अधिक महत्त्वशाली है। मन, तन में भी शक्ति भर देता है।

व लम्बा-चौड़ा दवाई का पर्चा पकड़ा देते हैं ऐसे वैद्यों को सुभाषितकार कहते हैं :-

वैद्यराजस्तु नमस्तुभ्यं यमराजस्तु सहोदराः।
यमराजः हरतु प्राणं, त्वं प्राणं धनानि च॥

हे वैद्यराज ! तुम तो यमराज के सहोदर हो। तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ। यमराज तो मात्र प्राण हरता है परन्तु तुम तो प्राण व धन दोनों हरते हो।

आज की स्थितियाँ बिगड़ती जा रही हैं। पैसे कमाने के लिए बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं, मुर्दा को भी पैसों के लिए I.C.U. में रखे रहते हैं। आज के समय में व्यक्ति आँखों का ऑपरेशन कराने जाता है, डॉ. किडनी निकाल लेता है।

मन बल ही साधु-संतों के पास होता है। चीन की रैकी चिकित्सा में भावनाएँ दी जाती हैं। ''यह रोग ठीक हो जाये'' की माला फेरते-फेरते भावनाओं से मनः तरंगों से रोग सचमुच ठीक हो जाता है। प्राचीन काल में संत जंगलों में रहते थे, वहाँ बाम, विक्स नहीं होते थे। उनका सिर दुःखे तो बाम नहीं, ध्यान लगाते थे। आत्मध्यान लगाने से मन की शक्ति बढ़ जाती है और तन की पीड़ायें स्वयं समाप्त हो जाती हैं।

श्री वादिराजसूरि कुष्ठ से पीड़ित थे। प्रभु अर्चना से क्षणभर में सारे दुःख दूर हो गये, कुष्ट रहित हो गये। कवि कहता है-

''प्रभु नाम की औषधि, गुरु नाम की माला।
तन बल देगी, मन बल देगी, देगी मुक्ति शाला॥''

प्रभु नाम की औषधि से सारे बल स्वतः मिल जाते हैं। बर्फ में 2-3 दिन के दबे व्यक्ति जीवित निकल आते हैं। भूकम्प में बड़ी-बड़ी क्षतियाँ हुई परन्तु मलबे में दबे लोग जीवित निकल आते हैं। कारण है प्रभु की कृपा। प्रभु की कृपा से विस्मयकारी बल मिलता है।

सर्कस में व्यक्ति के सीने पर ट्रक, हाथी निकल जाते हैं। फिर भी कुछ नहीं होता - यह सब मन बल है। युद्ध में योद्धा का सिर कटने पर भी धड़ युद्ध करता रहता है, क्योंकि मन वीर रस से भरा है। उपवास, अंतराय हो तो पूज्य गुरुदेव संबल देते हैं जिससे मन बल बढ़ता है। जब कोई व्यक्ति अपनी साधना से घबराता है, अंत समय में प्यास से तड़फता है तो गुरुजन स्थितीकरण करते हैं-

सिंधु नीर तें प्यास न जाए, तो पण एक न बूंद लहाये।

हे जीव ! तूने नरकों में कितना कष्ट सहा है, क्या आज छोटी-सी तृषा के लिए जीवन भर की साधना को खो देना चाहते हो- यह चिंतन मन को शक्ति देता है।

(3) आत्म बल :- तन बल व मन बल से भी श्रेष्ठ आत्म बल है। त्रिपिटक नामक बौद्ध शास्त्रों में घटना मिलती है- बुद्ध, पिहीतास्रव के शिष्य थे। एक बार बुद्ध अपनी तपस्या से विचलित हो गये। वे ऊनोदर तप कर रहे थे। मात्र 1 चावल लेते थे, एक दिन कमजोरी होने से वे गिर पड़े तो तपस्या से विचलित हो राज्य की ओर लौट गये। रास्त में एक समुद्र मिलता है। उसके तट पर एक गिलहरी बार-बार पूंछ पानी में भिगाती, फिर सुखाती, फिर भिगोती। यह दृश्य देख बुद्ध पूछते हैं- हे गिलहरी ! वह क्या कर रही हो ? वह कहती है- मेरे छोटे-छोटे बच्चों को इस दरिया ने अपना ग्रास बनाया है, अतः मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं इसे सुखाकर रहूँगी। बुद्ध कहते हैं- तुझे पता है दरिया कितना बड़ा है। वह कहती है-हाँ ! तेरी आयु कितनी है, वह भी पता है ? तेरी पूंछ कितनी बड़ी है, वह भी पता है ? हाँ, लेकिन मैं अपनी प्रतिज्ञा से डिगूंगी नहीं। गिलहरी के साहस भरे वचन सुन बुद्ध आत्मबोध को प्राप्त होते हैं कि- हे भगवन् ! मैं भी अनंत बली हूँ, फिर तन में क्यों अटका हूँ। मैं भी अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ रहूँगा।

व्यक्ति के कर्मों का क्षय, तन व मन बल से नहीं, आत्म बल से ही होता है। आत्मबल सबसे बड़ा है। तन से काम करें तो जितनी energy खर्च होती है, मन से काम करने पर उससे कई गुनी energy खर्च होती है।

एक चपरासी 8 घंटे ड्यूटी देता है। साहब 2 घंटे फाइल चैक करता है, परन्तु वेतन ऑफिसर का ज्यादा है, क्योंकि Energy loss मन से अधिक होता है।

जज कम बोलता है, वकील ज्यादा, परन्तु Energy जज की ज्यादा खर्च होती है इसलिए वेतन जज का अधिक है।

चपरासी को दिमाग कम खर्च करना पड़ता है, प्रिंसिपल को स्कूल, टीचर्स, बच्चे सबका वहन करना है, इसलिए कीमत मानसिक शक्ति की है। जो शक्ति का मूल्यांकन करता है वह ही अनंत शक्ति पा सकता है।

40 किलो (1 मन) भोजन से 1 तौला शक्ति का निर्माण होता है। नासमझ उसका दुरुपयोग करते हैं। जो शक्ति का संरक्षण, संवर्द्धन करता है वह अनंत बलशाली बनता है। शक्ति को छिपाने वाला, शक्ति का क्षरण करता है, ज्ञान को झेलने के लिए भी शक्ति चाहिए। एक बच्चे ने Competition में आकर रात-रात भर पढ़ाई की। Over पढ़ने से उसके mind की नस फट गई। ज्यादा सोचने से व्यक्ति पागल हो जाते हैं।

आज के समय में व्यक्ति Tension कर करके Energy Wastage करते हैं, Tension कर करके बीमारियों को आमंत्रण देते हैं, इसलिए हमें चाहिए अपनी शक्ति का संरक्षण करें; चिंता नहीं, चिंतन करें। चिंतन से शक्ति बढ़ती है, चिंता से क्षय होती है। इसलिए चिंता छोड़ें, चिंतन करें, शक्ति का संरक्षण कर कर्मों का क्षय कर अनंतबली बनें।

इसी भावना के साथ...

॥ 1008 महावीर भगवान की जय॥

तुम सबमें समाओ

सूक्ष्मत्व गुणयुक्त सिद्ध भगवान

(नाम कर्म का चित्र)

सूक्ष्मत्व पर आवरण, नाम कर्म है नाम,
नाम कर्म का क्षय किया, गुण सूक्ष्मत्व महान।
सिद्धों का गुण है महा, ध्याओ चेतनराज,
तुम भी पा सकते वही, अतुल सुखों का राज॥

"सूक्ष्मत्व गुण : तुम सबमें समाओ"

अष्टाह्निका पर्व की मंगल बेला, हम सिद्धार्चना करने उपस्थित हुए जिसका जो पावन पुनीत लक्ष्य होता है दृष्टि भी वह वहीं पर रखता है। जिसकी श्रद्धा के देवता सिद्ध परमेष्ठी है, वह उनकी ही अर्चना करता है तथा उनके ही जैसे गुणों को पाने की चेष्टा करता है। हमने इन अष्टाह्निका पर्व के पुनीत दिनों में सिद्धार्चना का भाव बनाया है इसलिए सिद्ध परमेष्ठी ही हमारे लिए इष्ट है।

आचार्य पूज्यपाद महाराज ने 'सिद्ध भक्ति' में सिद्धों की पुनीत अवस्था का चित्रण करते हुए कहा है–

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृतिसमुद्यान साधितात्मस्वभावान्,
वंदे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुणगणोच्छादि दोषापहाराद्,
योग्योपादानयुक्त्या दृषद्, इह यथा हेमभावोपलब्धिः॥1॥

अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ण पाषाण में शुद्ध स्वर्ण पर्याय प्राप्त करने की योग्यता है किन्तु किट्ट-कालिमा आदि से युक्त होने से वह शुद्ध पर्याय प्रकट नहीं हो पाती। जब कोई बुद्धिमान पुरुष 16 ताव देकर उसे अग्नि से संतप्त कर किट्ट कालिमा को दूर कर देता है तब स्वर्ण पाषाण अपने वास्तविक रूप को प्राप्त हो, शुद्धता से युक्त स्वर्ण पर्याय को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् शुद्ध सोने की हमें प्राप्ति हो जाती है।

उसी प्रकार **''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया''** शुद्धनय से प्रत्येक भव्यात्मा सिद्ध भव्यात्मा सिद्ध भगवन्तों के समान शुद्ध है। प्रत्येक भव्यात्मा सिद्धावस्था/सिद्ध पर्याय को प्राप्त करने की योग्यता रखता है। परन्तु ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से आवृत्त हुआ, कर्म कालिमा से मलीन होता हुआ अपनी शुद्धावस्था को प्राप्त नहीं कर पाता, जब वह भव्यात्मा 12 तप रूपी अग्नि में तपता है तथा 4 आराधनाओं का आश्रय लेता है। इस प्रकार अपनी आत्मा को 16

ताव देता है अर्थात् घोर तपश्चरण करता है और उस तपश्चरण के माध्यम से उसके सम्पूर्ण कर्म कालिमा नष्ट हो जाती है और कर्म कालिमा से रहित हो आत्मा की सिद्धि अर्थात् स्वात्मोपलब्धि करती है। जिन भव्य जीवों ने अष्ट कर्मों का क्षय कर दिया है, आत्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लिया है वे सिद्ध कहलाते हैं।

जिस प्रकार स्वर्ण पाषाण की कीमत नहीं होती, परन्तु सोलह ताव देने के बाद जब वह शुद्ध हो जाता है तो उसकी कीमत बढ़ जाती है। वह बहुमूल्य हो जाता है। उसी प्रकार जब आत्मा तप रूपी अग्नि में तपती है तो वह अष्ट कर्मों से मुक्त होकर शुद्धावस्था को प्राप्त हो जाती है। तब वह सामान्य नहीं सिद्धात्मा बनकर जगत्पूज्य हो जाती है।

यहाँ स्तुतिकर्ता आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सिद्धपद की प्राप्ति के लिए, उनके गुणों का स्मरण करते हुए पूर्ण विशुद्ध अवस्था को प्राप्त सिद्ध भगवन्तों की वंदना की है। यहाँ स्तुतिकर्ता आचार्य पूज्यपाद महाराज ने **''गुण प्रग्रहाकृष्टितुष्टः''** पद दिया। यह अपने आप में विचारणीय है। जैसे– कूप/बाबड़ी आदि में गिरी वस्तु को रस्सी के माध्यम से ऊपर खींचा जाता है, वैसे ही संसार रूपी गहन कूप में गिरे भव्य जीवों को सिद्ध परमेष्ठियों के श्रेष्ठ/महानतम गुणों में की जाने वाली भक्ति रूपी रस्सी ही तिराने में ऊपर लाने में समर्थ हो सकती है। अर्थात् सिद्धों की भक्ति हमें भवसागर से पार लगाती है।

सिद्धों के आठ गुणों में से आज हम सूक्ष्मत्व गुण को देखेंगे।

सूक्ष्मत्व गुण का तात्पर्य है– जो न किसी से बाधित हो, न दूसरों को बाधित करे वह सूक्ष्म है। सिद्धों में वह गुण नामकर्म के क्षय से उत्पन्न होता है। नाम कर्म के निमित्त से ही शरीरादिक की प्राप्ति होती है और शरीर आदि स्थूल होते हैं। स्थूल वस्तु हमें चर्म नेत्रों से दिखायी देती है। पौद्गलिक पदार्थों के भेदों को देखें तो–

(1) स्थूल-स्थूल, (2) स्थूल, (3) स्थूलसूक्ष्म, (4) सूक्ष्मस्थूल, (5) सूक्ष्म, (6) सूक्ष्म-सूक्ष्म।

(1) स्थूल-स्थूल :- टूटने पर निशान आ जाये वह स्थूल-स्थूल है, जैसे धागा टूटने पर जोड़े तो गठान आ जाती है। जैसे-पत्थर आदि।

(2) स्थूल :- चर्म नेत्रों से दिखे वह स्थूल है। चमड़ी कट जाने पर पुनः भर जाती है। निशान भी नहीं आता, औदारिक आदि शरीर।

(3) स्थूल सूक्ष्म :- जो चर्म चक्षुओं से तो दिखायी दें परन्तु पकड़ में न आये। जैसे-छाया।

(4) सूक्ष्म स्थूल :- जो चर्म चक्षुओं से तो दिखायी न दें परन्तु पकड़ में आये वह सूक्ष्म-स्थूल है। जैसे-शब्द।

(5) सूक्ष्म :- कार्मण वर्गणा दिखने व पकड़ने में नहीं आती है, परमाणु की स्कन्ध अवस्था है। इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है इसलिए सूक्ष्म है।

(6) सूक्ष्म-सूक्ष्म :- पुद्गल का शुद्ध परमाणु सूक्ष्म-सूक्ष्म होता है, क्योंकि वह हम सामान्य छद्मस्थों के ग्राह्य नहीं है अपितु अवधिज्ञानी व केवलज्ञानी के गम्य है।

इन्हीं अवस्थाओं से बहुत से शरीर आंगोपांग आदि बनते हैं। शरीर स्थूल होता है। औदारिक शरीर स्थूल है-**परं परं सूक्ष्मम्।**

औदारिक से वैक्रियक सूक्ष्म है, वैक्रियिक से आहारक, आहारक से तैजस व तैजस से कार्मण शरीर सूक्ष्म है।

ये परस्पर में एक दूसरे से सूक्ष्म हैं, परन्तु परिपूर्ण सूक्ष्म नहीं हैं। इन शरीरों की रचना नाम कर्म करता है। भुज्यमान आयु में उत्कर्षण, उपकर्षण, संक्रमण सब संभव है। बद्धायुष्क में संक्रमणादि अवस्थाएं संभव नहीं है।

नाम कर्म शरीर की रचना करता है। नाम कर्म की पिण्ड प्रकृतियाँ 42 हैं, उत्तर भेद 93 हैं।

आचार्य उमास्वामी महाराज ने **'तत्त्वार्थसूत्र'** ग्रन्थ के आठवें अध्याय के 11वें सूत्र में नाम कर्म की प्रकृतियों का वर्णन करते हुए कहा है-

गति जाति शरीरांगोपांग निर्माण बंधन संघात संस्थान, संहनन स्पर्श रस गन्ध वर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छवासविहायोगतयः प्रत्येक शरीर त्रस सुभग-सुस्वर शुभ सूक्ष्म पर्याप्त स्थिरादेय यशःकीर्ति सेतराणि तीर्थकरत्वं च॥11॥

गति, जाति, शरीर, आंगोपांग, निर्माण, बंधन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास और विहायोगति तथा प्रतिपक्ष प्रकृतियों के साथ साधारण शरीर व प्रत्येक शरीर, स्थावर और त्रस, दुर्भग और सुभग, दुःस्वर व सुस्वर, अशुभ और शुभ, बादर और सूक्ष्म अपर्याप्त व पर्याप्त, अस्थिर व स्थिर, अनादेय व आदेय, अयशःकीर्ति व यशःकीर्ति एवं तीर्थंकर- ये ब्यालीस नामकर्म के भेद हैं।

(1) गतिनाम कर्म :- जिसके उदय से आत्मा भवान्तर को जाता है वह गति नामकर्म है। यह चार प्रकार का होता है- नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति व देवगति।

(i) मनुष्य गति नाम कर्म :- जिस कर्म का निमित्त पाकर जीव मनुष्य भव को प्राप्त होता है, वह मनुष्य गति नाम कर्म है।

(ii) देवगति नाम कर्म :- जिस कर्म का निमित्त पाकर जीव देव भव को प्राप्त होता है वह देवगति नाम कर्म है।

(iii) नरक गति नाम कर्म :- जिस कर्म का निमित्त पाकर आत्मा का नारक भव होता है वह नरकगति नाम कर्म है।

(iv) तिर्यंच गति नाम कर्म :- जिस कर्म का निमित्त पाकर जीव तिर्यंच भव को प्राप्त होता है वह तिर्यंच गति नाम कर्म है।

(2) जाति नाम कर्म :- जिस कर्म के उदय से आत्मा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय जाति में जन्म लेता है, वह क्रमशः एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म है।

(3) शरीर नाम कर्म :- जिसके उदय से आत्मा के शरीर की रचना होती है वह शरीर नाम कर्म है। वह पाँच प्रकार का है :-

औदारिक शरीर नाम कर्म, वैक्रियिक शरीर नाम कर्म, आहारक शरीर, तैजस व कार्माण शरीर नाम कर्म।

(4) आंगोपांग नाम कर्म :- जिसके उदय से आंगोपांग का भेद होता है (स.सि.) वह आंगोपांग नाम कर्म है। अथवा जिस कर्म के उदय से आंगोपांग की रचना हो उसे आंगोपांग नाम कर्म कहते हैं।

(5) निर्माण नाम कर्म :- जिसके निमित्त से परिनिष्पत्ति अर्थात् रचना होती है वह निर्माण नामकर्म है अर्थात् **''निर्मीयतेऽनेनेति निर्माणम्''** जिसके द्वारा रचना की जाती है, वह निर्माण नाम कर्म है।

(6) बंधन नाम कर्म :- शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुए पुद्‌गलों का अन्योन्य प्रवेश संश्लेष जिसके निमित्त से होता है, वह बंधन नामकर्म है।

संघात नाम कर्म :- जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरों की छिद्र रहित होकर परस्पर प्रदेशों के अनुप्रवेश द्वारा एकरूपता आती है वह संघात नामकर्म है।

संघात नाम के भेद व लक्षण :- (1) औदारिक संघात, (2) वैक्रियिक संघात, (3) आहारक संघात, (4) तैजस संघात, (5) कार्माण संघात।

जिस कर्म के उदय से औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्माण शरीरों के परमाणु दीवाल में लगे हुए ईंट और गारे पर सीमेन्ट के प्लास्टर की तरह छिद्र रहित होकर परस्पर प्रदेशों के अनुप्रवेश द्वारा एकरूपता को प्राप्त होते हैं वह औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्माण संघात कहलाता है।

संस्थान नाम कर्म :- जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरों की आकृति बनती है वह संस्थान नाम कर्म है।

संस्थान के 6 भेद :- (1) समचतुरस्र संस्थान (2) न्योग्रोधपरिमंडल संस्थान, (3) स्वाति संस्थान, (4) कुब्जक संस्थान, (5) वामन संस्थान, (6) हुण्डक संस्थान।

समचतुस्र संस्थान :- जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर ऊपर-नीचे तथा बीच में समान भागरूप अर्थात् सुडौल हो उसे समचतुस्र संस्थान कहते हैं।

न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान :- जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर वटवृक्ष की तरह नाभि से नीचे पतला और ऊपर मोटा हो उसे न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान कहते हैं।

स्वाति संस्थान :- जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सर्प की वामी की तरह ऊपर पतला और नीचे मोटा हो उसे स्वाति संस्थान कहते हैं।

कुब्जक संस्थान :- जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कुबड़ा हो उसे कुब्जक संस्थान कहते हैं।

वामन संस्थान :- जिस कर्म के उदय से बौना शरीर हो वह वामन संस्थान है।

हुण्डक संस्थान :- जिस कर्म के उदय से शरीर के आंगोपांग किसी खास आकृति के न हो उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं।

वर्तमान भरत क्षेत्र में पंचमकाल के जीवों का संस्थान हुण्डक संस्थान है।

देव-नारकी जीवों का संस्थान- देवों का समचतुस्र संस्थान होता है तथा नारकी जीवों का हुण्डक संस्थान होता है।

संहनन नाम कर्म :- जिसके उदय से अस्थियों का बंधन विशेष होता है वह संहनन नामकर्म है। इसके 6 भेद हैं :-

(1) वज्रवृषभनाराच संहनन :- जिस कर्म के उदय से वृषभ (वेष्टन), नाराच (कील) व संहनन (हड्डियाँ) वज्रमयी हो उसे वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं।

(2) वज्रनाराच संहनन :- जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड़, वज्र की कीलियाँ हों परन्तु वेष्टन वज्र का न हो वह वज्रनाराच संहनन है।

(3) नाराच संहनन :- जिस कर्म के उदय से सामान्य वेष्टन व कीली सहित हाड़ हों उसे नाराच संहनन कहते हैं।

(4) अर्द्धनाराच संहनन :- जिसके उदय से हड्डियों की संधियाँ अर्द्धकीलित हों उसे अर्द्धनाराच संहनन कहते हैं।

(5) कीलक संहनन :- जिसके उदय से हड्डियाँ परस्पर कीलित हों उसे कीलक संहनन कहते हैं।

(6) असंप्राप्तासृपाटिका संहनन :- जिसके उदय से जुड़ी-जुड़ी हड्डियाँ नसा-जालों से बंधी हुई हों परस्पर कीलित न हों उसे असंप्राप्तासृपाटिका संहनन कहते हैं।

स्पर्श नामकर्म :- जिसके उदय से स्पर्श की उत्पत्ति होती है वह स्पर्श नाम कर्म है। इसके आठ भेद हैं :- (1) हल्का, (2) भारी, (3) कड़ा, (4) नरम, (5) रूखा, (6) चिकना, (7) ठंडा, (8) गरम।

रस नाम कर्म :- जिसके उदय से रस में भेद होता है वह रस नाम कर्म है। इसके पाँच भेद हैं :- (1) तिक्त, (2) कटु, (3) कषाय, (4) आम्ल, (5) मधुर।

गंध नाम कर्म :- जिसके उदय से गंध की उत्पत्ति होती है उसे गंध नाम कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं- (1) सुगंध, (2) दुर्गंध।

वर्ण नाम कर्म :- जिसके निमित्त से वर्ण में विभाग होता है, वह वर्ण नाम कर्म है। इसके पाँच भेद हैं- (1) काला, (2) नीला, (3) पीला, (4) लाल, (5) सफेद।

आनुपूर्वी नाम कर्म :- जिसके उदय से पूर्व शरीर के आकार का विनाश न हो वह आनुपूर्वी नाम कर्म है। इसके चार भेद हैं- (1) नरकगत्यानुपूर्वी (2) मनुष्य गत्यानुपूर्वी (3) तिर्यंच गत्यानुपूर्वी (4) देवगत्यानुपूर्वी।

नरक गत्यानुपूर्वी :- अन्य गति से नरक गति में जाने वाले जीव के आत्म प्रदेश पूर्व शरीराकार रूप जिस कर्म के उदय से होते हैं वह नरक गत्यानुपूर्वी है।

मनुष्य गत्यानुपूर्वी :- अन्य गति से मनुष्य गति में जाने वाले जीव के आत्मप्रदेश पूर्व शरीराकार जिस कर्म के उदय से हो वह मनुष्यगत्यानुपूर्वी नाम कर्म है।

तिर्यंच गत्यानुपूर्वी :- अन्य गति से तिर्यंच गति में जाने वाले जीव के आत्म प्रदेशों का पूर्व शरीराकार होना।

देव गत्यानुपूर्वी :- अन्य गति से देव गति में जाने वाले जीव के आत्म प्रदेशों का पूर्व शरीराकार होना।

अगुरुलघु नाम कर्म :- जिसके उदय से जीव का शरीर लोहे की तरह भारी व रूई की तरह हल्का न हो वह अगुरुलघु नाम कर्म है।

उपघात नाम कर्म :- जिसके उदय से स्वयंकृत उद्बंधन और पहाड़ से गिरना आदि निमित्तिक उपघात होता है। वह उपघात नाम कर्म है। शस्त्रघात, विषभक्षण, अग्निपात, जल मञ्जन आदि के द्वारा आत्मघात करना भी उपघात है।

परघात नाम कर्म :- जिसके निमित्त से परशस्त्रादिक का निमित्त पाकर व्याघात होता है वह परघात नामकर्म है।

आतप नाम कर्म :- जिसके उदय से शरीर में आतप की प्राप्ति होती है वह आतप नाम कर्म है। इसका उदय सूर्य के विमान में स्थित बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीव के होता है।

उद्योत नाम कर्म :- जिसके निमित्त से शरीर में उद्योत होता है वह उद्योत नाम कर्म है। इस कर्म का उदय चन्द्रमा के विमान में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के, खद्योत (जुगनू), सिंह, बिल्ली आदि किन्हीं तिर्यंचों के होता है।

उच्छ्वास नाम कर्म :- जिस कर्म के निमित्त से उच्छ्वास होता है। वह उच्छ्वास नाम कर्म है।

विहायोगति नाम कर्म :- विहाय अर्थात् आकाश, जिसके उदय से आकाश में गमन होता है वह विहायोगति नाम कर्म है। इसके दो भेद हैं :-

(1) प्रशस्त विहायोगति नामकर्म (2) अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म।

प्रशस्त विहायोगति :– गज, वृषभ, हंस, मयूर आदि के गमन की तरह सुन्दर गति को प्रशस्त विहायोगति कहते हैं।

अप्रशस्त विहायोगति :– ऊँट, गधा, बिल्ली, कुत्ता, सर्प आदि के समान कुटिल गति को अप्रशस्त विहायोगति कहते हैं।

प्रत्येक शरीर नाम कर्म :– जिस कर्म के निमित्त से 'शरीर' एक आत्मा के उपभोग का कारण होता है वह प्रत्येक शरीर नाम कर्म है।

साधारण शरीर नाम कर्म :– बहुत आत्माओं के उपभोग का हेतु रूप साधारण शरीर जिसके निमित्त से होता है वह साधारण शरीर नाम कर्म है।

त्रस नाम कर्म :– जिसके उदय से द्वीन्द्रियादिक में जन्म होता है वह त्रस नामकर्म है।

स्थावर नाम कर्म :– जिसके उदय से एकेन्द्रियों में जीव की उत्पत्ति होती है वह स्थावर नाम कर्म है।

सुभग नाम कर्म :– जिसके उदय से अन्य जनों में प्रीति रूप अवस्था होती है, वह सुभग नाम कर्म है।

दुर्भग नाम कर्म :– जिसके उदय से रूपादि गुणयुक्त होकर भी अप्रीतिकर अवस्था होती है वह दुर्भग नामकर्म है।

सुस्वर नाम कर्म :– जिसके उदय से मनोज्ञ स्वर की रचना होती है वह सुस्वर नाम कर्म है।

दुःस्वर नाम कर्म :– जिसके उदय से गधे, बिल्ली, कौआ आदि के स्वर की तरह कर्कश स्वर हो।

शुभ नाम कर्म :– जिसके उदय से शरीर के अवयव रमणीय होते हैं वह शुभनाम कर्म है।

अशुभ नाम कर्म :– जिसके उदय से शरीर के अवयव मनोहर न हो उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं।

सूक्ष्म शरीर नाम कर्म :– जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो न किसी को रोकता हो और न किसी से रोका जा सकता हो उसे सूक्ष्म शरीर नाम कर्म कहते हैं।

बादर शरीर नाम कर्म :– जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो दूसरों को रोकता हो तथा दूसरे से रुकने वाला हो वह स्थूल/बादर शरीर नामकर्म है।

पर्याप्ति नाम कर्म :– जिसके उदय से अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण हो उसे पर्याप्ति नामकर्म कहते हैं।

अपर्याप्ति नाम कर्म :– जिस कर्म के उदय से जीव के एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो उसे अपर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं।

अस्थिर नाम कर्म :– जिसके उदय से धातु व उपधातुएँ अपने-अपने स्थान में स्थिर न रहें वह अस्थिर नाम कर्म है।

स्थिर नाम कर्म :– जिसके उदय से शरीर की धातु व उपधातुएँ अपने-अपने स्थान में स्थिरता को प्राप्त हों, वह स्थिर नाम कर्म है।

आदेय नाम कर्म :– प्रभायुक्त शरीर का कारण आदेय नाम कर्म है।

अनादेय नाम कर्म :– निष्प्रभ शरीर का कारण अनादेय नाम कर्म है।

यशःकीर्ति नाम कर्म :– पुण्य गुणों की प्रसिद्धि का कारण यशःकीर्ति नामकर्म है।

अयशःकीर्ति नाम कर्म :– अपयश का कारण भूत नामकर्म अयशःकीर्ति नामकर्म है।

तीर्थंकर प्रकृति :– जिसके उदय से जीव पंचकल्याणक की विभूति रूप अर्हंत अवस्था को प्राप्त करता है वह तीर्थंकर नाम कर्म है।

नाम कर्म के उदय में ही सूक्ष्मत्व गुण पैदा नहीं हो पाता है। जब नाम कर्म का समूल क्षय हो जाता है तभी सूक्ष्मत्व गुण उत्पन्न होता है। नाम कर्म का क्षय करने हेतु उसके आस्रव के कारणों को जान अशुभ नाम कर्म के

आस्रव से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। अशुभ नाम कर्म के आस्रव का हेतु बतलाते हुए तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ के छठवें अध्याय में आचार्य श्री उमास्वामी जी महाराज सूत्र 22 के माध्यम से कहते हैं– **योगवक्रता विसंवादनञ्चाशुभस्य नाम्नः ॥22॥**

योगों की कुटिलता और विसंवाद ये अशुभ नामकर्म के आस्रव के हेतु हैं।

योगवक्रता :– मन, वचन और काय की कुटिलता को योगवक्रता कहते हैं। अर्थात् काय से अन्य करना, वचन से अन्य बोलना और मन से अन्य ही चिंतन करना योगवक्रता है।

मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कार्मण्यन्यत् दुरात्मनां।
मनस्येकं वचस्येकं, कर्मण्येकं महात्मनां॥

सुभाषितकार कहते हैं कि जो व्यक्ति दुरात्मा प्रकृति के होते हैं उनके मन, वचन व काय की प्रवृत्ति भिन्न–भिन्न होती है। जबकि जो महात्मा होते हैं उनके मन, वचन और काय की प्रवृत्ति एक समान होती है। मन, वचन, काय की कुटिलता ही योगवक्रता है।

(2) विसंवादन :– जो स्वर्ग व मोक्ष के योग्य समीचीन क्रियाओं का आचरण कर रहा है उसे उसके विपरीत मन, वचन व काय की प्रवृत्ति द्वारा रोकना कि ऐसा मत करो, ऐसा करो, यह विसंवादन है। अथवा–

अपने साधर्मी, भाई–बंधु से झगड़ा करना कि तुमने मेरी सामग्री को हाथ कैसे लगाया, तुम मेरे स्थान पर कैसे बैठे, तुमने मुझे धक्का कैसे दिया इत्यादि साधर्मी विसंवाद कहलाता है।

'च' शब्द से अन्य हेतुओं का भी ग्रहण होता है। जैसे–मिथ्यादर्शन, चुगलखोरी, चित्त का स्थिर न रहना, मापने–तौलने के बाँट पर घट–बढ़ रखना, दूसरों की निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना, असत्य वचन बोलना, सदा उज्ज्वल वेष रखना, सुरूपता का मद होना, कठोर वचन बोलना, दूसरों

की विडम्बना करना, उपहास करना, ईंटें पकाना, प्रतिमा तोड़ना, जिनालय का ध्वंस करना, तीव्र कषाय रूप परिणाम, पाप कार्यों से आजीविका करना; ये भी अशुभ नाम कर्म के आस्रव के हेतु हैं।

शुभ नाम कर्म के आस्रव के हेतुओं को बतलाते हुए आचार्य भगवन् कहते हैं–**''तद्विपरीतं शुभस्य''**। अशुभ नाम कर्म से विपरीत योगों की सरलता व अविसंवाद – ये शुभ नाम कर्म के आस्रव के हेतु हैं। चकार शब्द से अन्य हेतु भी ग्रहण करने योग्य हैं–

धार्मिक पुरुषों व स्थानों का दर्शन करना, आदर–सत्कार करना, सद्भाव रखना, उपनयन, संसारभीरूता, प्रमाद का त्याग करना, व्रत लेना, जिनमंदिर, जिनचैत्य का निर्माण करना, मृदुभाषण, पापकर्म रहित आजीविका करना; ये सब भी शुभ नाम कर्म के आस्रव के हेतु हैं।

सूक्ष्म का तात्पर्य है– जो न तो दूसरों को बाधा पहुँचाये न स्वयं बाधित हो। जब तक यह प्राणी संसार में रहता है, प्रायः दूसरों को बाधा पहुँचाता है व स्वयं दूसरों से बाधित होता है। सास को बहू से बाधा है, बहू को सास से, पिता को अपने आलसी बेटे से बाधा है, बेटे को पिताजी पैसा नहीं देते इसलिए बाधा है। संसार में हम जहाँ देखते हैं वहाँ रुकना व रोकना चलता ही रहता है। पुलिस चोरों पर ब्रेक लगाती है। मालिक नौकर पर; परन्तु वह परम वीतराग सदा सम्पूर्ण बाधाओं से रहित है क्योंकि सिद्धों ने सूक्ष्मत्व गुण पा लिया है। एक ही स्थान से अनंतों प्राणी सिद्धि को पाते हैं, एक दूसरे में समाते जाते हैं परन्तु रोका–टोकी नहीं है। रुकना व रोकना नहीं होता है क्योंकि वे इतनी सूक्ष्म व विशुद्ध दशा को प्राप्त हो गये हैं कि एक–दूसरे से बाधित नहीं होते हैं। टकराहट स्थूल में होती है। दुबले–पतले लोग कहीं भी बन जाते हैं, मोटे व्यक्ति को परेशानी, चाहे चलना हो या उठना–बैठना हो, मोटा व्यक्ति परेशान रहता है। स्थूलता का क्षय कर जो सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त हो गये वे तो परमानंद में हैं। कोई रोका–टोकी नहीं, आनंद ही आनंद है। परन्तु जहाँ नाम कर्म विद्यमान रहता है वहाँ वह चित्रकार की तरह अपनी

नई-नई चित्रकारी करता ही रहता है। संसार में लाखों, करोड़ों, अरबों इंसान हैं परन्तु हूबहू 100% शक्ल किसी की नहीं मिलती। रंग, रूप, आकार, लंबाई, चौड़ाई, मोटाई में अंतर पाया जाता है।

कोई अन्य मती जो कहते हैं कि प्राणियों की रचना ब्रह्मा करता है, परन्तु यदि भगवान शरीर बनाते हैं तो वे रागी-द्वेषी हो जायेंगे। क्योंकि कोई सुन्दर है, कोई बदसूरत, कोई अंगोपांग सहित है, कोई अंगभंग है। ऐसा करने वाला किसी को शत्रु लगता है, किसी को मित्र। फिर वह रागी-द्वेषी परमात्मा कैसे हो सकता है ? हमारे भगवान तो हाथ पर हाथ रखे बैठे होते हैं, कुछ भी नहीं करते। एक बार एक बच्चे ने अपनी माँ से पूछा- माँ भगवान ऐसे क्यों बैठे हैं ? माँ कभी-कभी बच्चों को चुप कर देती है। ध्यान रखिये बच्चे को चुप मत करिये। क्योंकि बच्चों का I.Q. Power व Catching Capacity भी अच्छी होती है इसलिए उसके हर प्रश्न का उत्तर दें। एक 3 साल की बच्ची ने अच्छी फोटोग्राफी कर गिनीज बुक में रिकॉर्ड बनाया। 6 साल के बच्चे ने ड्राईविंग रिकॉर्ड बनाया। एक 7 साल का बच्चा यूनिवर्सिटी (सागर) में आया, वह संस्कृत भाषा में बात करता है। बच्चों को चुप करने वाली माँ बच्चों की प्रतिभा को दबाती है। अच्छी सच्ची माँ हर प्रश्न का उत्तर देती है। बच्चे ने पूछा-माँ ! भगवान हाथ पर हाथ रखकर क्यों बैठे हैं ? माँ कहती है-बेटा ! उन्हें जो करना था, सब कर लिया। अब उन्हें कुछ करना शेष नहीं है, वे कृत्कृत्य हो गये हैं इसलिए हाथ पर हाथ रखकर बैठे हैं।

बंधुओ ! शरीर की रचना नाम कर्म करता है, परमात्मा नहीं। परमात्मा तो वीतरागी, हितोपदेशी, कृत्कृत्य हो चुके हैं। नाम कर्म के कारण कोई सुन्दर है कोई बदसूरत, कोई काला है कोई गोरा। शरीर के निमित्त सारे पाप होते हैं। शरीर न हो तो खाना बनाने, पैसा कमाने की आवश्यकता ही न हो।

संत जन जब आहार लेने जाते हैं तो सोचते हैं- यह शरीर न होता तो किसी के आगे हाथ करने की जरूरत न पड़ती। बहिरात्मा जीव व देह को

एक गिनता है इसलिए मोक्षमार्ग से बहिर्भूत है। अंतरात्मा जीव व देह की भिन्नता को समझता है। वह सोचता है-

इस धरा का इस धरा पर, सब धरा रह जायेगा।
बाँध कर तू मुट्ठी आया, कर पसारे जायेगा॥
मान मेरा कहना, नहीं तो पछतायेगा।
मिट्टी का पुतला, मिट्टी में मिल जायेगा॥

इसलिए नाम कर्म के उदय से प्राप्त शुभाशुभ शरीर में राग-द्वेष नहीं करता। सुन्दर शरीर पाकर अभिमान नहीं करता, बदसूरत शरीर पाकर दुःखित नहीं होता। क्योंकि ज्ञानी भेदविज्ञानी होता है, वह आत्मा को अपना मानता है।

जो चित्रकार की तरह नाना रूप बनाकर चित्र-विचित्र रचना कर रहा था उस नाम कर्म को क्षय कर अरहंत परमेष्ठी सिद्ध दशा को पाते हैं व सूक्ष्मत्व गुण को प्रकट कर लेते हैं। परमावधि ज्ञानी परमाणु तक को जान लेते हैं परन्तु वह सूक्ष्मत्व गुणधारी सिद्धों को नहीं जानता।

सूक्ष्मत्व गुण के कारण सिद्ध न किसी से बाधित होते हैं न किसी को बाधा पहुँचाते हैं। शिखरजी की टोंक में 1 करोड़ 11 लाख 11 हजार 111 जीव मोक्ष गये। वे एक ही स्थान पर पहुँचे परन्तु एक दूसरे के द्वारा न बाधा को प्राप्त होते हैं न बाधा पहुँचाते हैं। सूक्ष्मत्व गुण के कारण एक दूसरे में समाविष्ट हो जाते हैं।

सिद्धों ने जिस सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त कर लिया है, वह पावन पुनीत गुणरूपी संपदा हमें भी प्राप्त हो- इसी भावना के साथ...

॥ 1008 वासुपूज्य भगवान की जय॥

सबको दिल में बिठाओ

अवगाहनत्व गुणयुक्त सिद्ध भगवान

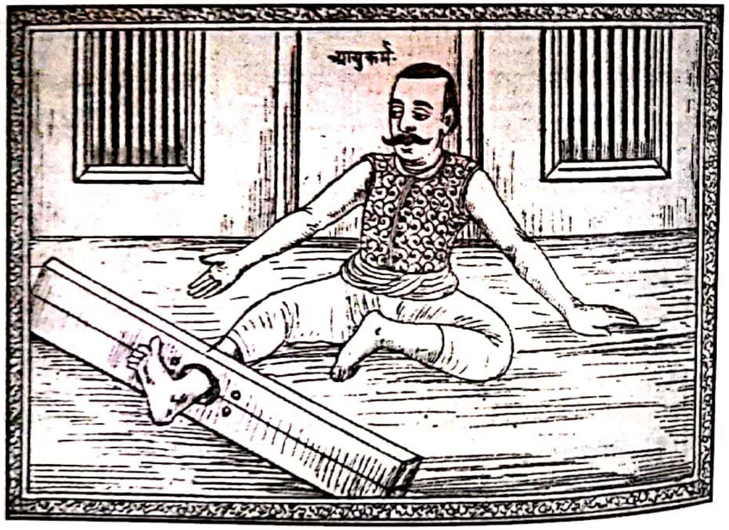

(आयु कर्म का चित्र)

अवगाहन गुण ढाँकता, आयु कर्म है नाम,
आयु कर्म का क्षय किया, अवगाहन गुणखान।
सिद्धों का गुण है महा, ध्याओ चेतनराज,
तुम भी पा सकते वही, अतुल सुखों का राज।।

''अवगाहनत्व : सबको दिल में बिठाओ''

सिद्धाष्ट गुण प्रवचनमाला के छठे दिन में प्रवेश करते हुए 'सिद्धचक्र महामण्डल विधान' के माध्यम से हम सिद्धार्चना कर रहे हैं। भक्ति वह सेतु है जिस पर चलकर भक्त भी एक दिन भगवान बन जाता है। भक्त जब अपने आराध्य की भक्ति में डूबता है तो कभी बड़ी-बड़ी उपमायें देता है। कभी गुणगान गाता है। सब अपने-अपने ज्ञान के क्षयोपशम के हिसाब से अपने-अपने आराध्य की स्तुति करते हैं। जो 'न्याय-मार्तण्ड', न्याय की मूर्ति होते हैं, वे न्याय परक भक्ति करते हैं। 'गोम्मटसार ग्रंथ' में आचार्य श्री नेमीचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती महाराज प्रथम महाधिकार की 68-69 वीं गाथा के माध्यम से अन्य मतों का खंडन करते हुए कहते हैं-

अट्ठविह कम्मवियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठ गुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।68।।

सदासिव संखो मक्कडि बुद्धो णेइयाइयो व वैसेसी।
ईसर मंडलिदंसण विदूसणट्ठं कयं एदं।।69।।

अर्थात् जो **'अट्ठविह कम्म वियला'** अर्थात् सिद्ध जीव स्वात्मा की उपलब्धि रूप सिद्धि से सम्पन्न होते हैं, वे अनेक प्रकार की उत्तर प्रकृतियों को गर्भ में लिये ज्ञानावरण आदि 8 मूल प्रकृतियों का, जो आठ गुणों की विरोधी हैं, क्षय हो जाने से कर्म रहित हैं।

याज्ञिक मत कहता है कि **'संसारी जीव की मुक्ति नहीं है'**।

सदाशिवमती कहता है- **'ईश्वर सदा कर्ममल से रहित है इसलिए मुक्त ही है।'**

इन दोनों मतों का खंडन करने के लिए ही **'अट्ठविह कम्म वियला'** विशेषण का प्रयोग आचार्य महाराज ने किया है।

(1) सदाशिवमती- जीव को सदा मुक्त मानते हैं। किन्तु यदि जीव सदा से मुक्त है तो जन्म-जरा-मृत्यु से रहित होना चाहिए। जबकि आत्मा

कर्मों से उत्पन्न सुख-दुःख भोगती है इसलिए वह कर्मों से रहित नहीं हो सकती। संसारी अवस्था में तो वह कर्मों से सहित है। यदि संसारी अवस्था में जीव कर्मों से रहित हो जाये तो मुक्ति किसे होगी ? इसलिए आचार्यश्री ने कहा कि आठ कर्मों से मुक्त होकर जीव सिद्ध होता है। ऐसा विशेषण देकर सदाशिव मतियों का खंडन किया है।

(2) सांख्यमत कहता है– सुख-दुःख, बुद्धि आदि गुणों का उच्छेद हो जाने पर जीव की मुक्ति हो जाती है। इस मत का निराकरण करने के लिए आचार्य महाराज ने **'शीतीभूत'** इस विशेषण को दिया है। शीतीभूत अर्थात् जन्म-मरण रूप सहज दुःख, रोगादि रूप शारीरिक दुःख, सर्प आदि से होने वाला आगन्तुक दुःख, आकुलता रूप मानसिक दुःख इत्यादि अनेक सांसारिक दुःखों की वेदना के संताप का सम्पूर्ण रूप से विनाश होने से सुख स्वरूप है।

सुख-दुःख बुद्धि आदि के उच्छेद हो जाने पर जीव मुक्त होता है, किन्तु आचार्य कहते हैं–

आत्मा का सुख, ज्ञान, दर्शन आदि नष्ट हो जाये तो इन गुणों का अभाव हो जाने पर आत्मा का ही अभाव मानना पड़ेगा।

उदाहरण :- एक आम है उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण है। यदि कहे कि आम तो है पर कोई रंग नहीं, खट्टा-मीठा कुछ नहीं, गंध भी नहीं तो फिर वह आम ही नहीं रहेगा। उसी प्रकार आत्मा को ज्ञान, सुख आदि स्वभाविक गुणों से रहित मानें तो आत्मा का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

(3) मस्करी मतानुयायी कहते हैं कि मुक्तात्माएँ पुनः कर्म मल के संसर्ग से संसार में लौट आती है तथा कुछ मत अवतारवाद की मान्यता रखते हैं कि मुक्तात्माएँ पुनः अवतार धारण करती हैं तथा पृथ्वी पर बढ़ते पाप का नाश करती हैं। उक्त दोनों प्रकार की मान्यताओं का खण्डन करने के लिए आचार्य महाराज ने तृतीय **'णिरंजणा'** यह विशेषण दिया है जिसका अर्थ है- वे सिद्ध निरंजन हैं अर्थात् नवीन आस्रव रूप कर्ममल रूप अंजन से रहित हैं।

मस्करी कहते हैं- कर्ममल के संसर्ग से रहित आत्मा पुनः अवतार लेती है। एक बार जो जल गया वह पुनः अंकुरित नहीं हो सकता, क्योंकि

जल गया है। यदि गैस पर तपा या सेक दिया गया है, उबाला गया है, वह पुनः अंकुरित नहीं होता। जिन्होंने कर्म की उर्वरा शक्ति को नष्ट कर सिद्ध अवस्था को पाया है वे पुनः लौट कर वापस नहीं आते। **'रत्नकरण्ड श्रावकाचार'** ग्रंथ में आचार्य श्री समन्तभद्र महाराज कहते हैं-

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्याः।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रांतिकरणपटुः॥

तीनों कालों में संभ्रांति उत्पन्न करने वाला उत्पाद होने पर भी, कल्पकाल बीत जाने पर भी मोक्षगामी जीवों में विक्रिया नहीं देखी जाती।

(4) बौद्ध मत कहता है- विश्व का प्रत्येक पदार्थ क्षणिक है। उसके निराकरण हेतु आचार्य भगवन् ने **'णिच्चा'** विशेषण दिया है। यद्यपि पर्यायार्थिक नय से तो पदार्थ क्षणिक है परन्तु द्रव्यदृष्टि से नहीं। कोई पहले बालक था, फिर युवा हुआ, फिर वृद्ध हुआ। युवा बालक नहीं है, बालक युवा व वृद्ध नहीं, वृद्ध बालक व युवा नहीं है। पर्याय मात्र बदल रही थी, परन्तु आत्मा वही की वही है जो बालक में थी, वही युवा में है, वही वृद्ध में।

सुवर्ण कंकन को मिटाकर हार बनाया, पर्याय बदल गई, वह सोना तो सोना है, नय की अपेक्षा से पर्याय क्षण-क्षण परिणमनशील है। परन्तु बौद्ध कहते हैं- द्रव्य व पर्याय एक है, प्रतिक्षण नई-नई आत्मा उत्पन्न होती है।

एक सेठजी थे, उनके पास बहुत सा पशुधन था। एक ग्वाला उनकी सेवा में रखा था। सेठजी बौद्ध मतानुयायी थे, परन्तु बड़े कंजूस थे। ग्वाला रोज गायें चराता, महीने भर में वेतन पाता। एक दिन वह अपना वेतन लेने गया। सेठजी शास्त्र पढ़ करके उठे थे। ग्वाले ने कहा- सेठजी ! वेतन चाहिए। सेठजी के दिमाग में शास्त्र घूम रहा था। अरे पागल ! न तो मैं अब वह सेठ हूँ, न तो वह ग्वाला, द्रव्य क्षण-क्षण में बदल रहा है। ग्वाला परेशान हो गया। वह वापस चला गया। शाम को जब गायें चराकर आया तो युक्ति मन में सूझी। उसने सारे पशु अपने घर में बाँध लिये। सेठ जी परेशान, आज 8 बज गये, अंधेरा हो गया। ग्वाला आया तो पूछा- क्यों रे ! तू इतना देरी से क्यों आया ? ग्वाला बोला-सेठजी ! अपनी गायें बाँध रहा था। अच्छा गायें

कहाँ हैं, मेरी थीं मेरे घर हैं, क्योंकि अब आप वह सेठ नहीं, मैं वह ग्वाला नहीं और गायें बदल गईं, इसलिए वे सब पशु अब मेरे हैं। सेठजी तो घबरा गये। बोले- ये ले तू अपना वेतन, मेरी गायें वापस ला दे।

बंधुओ ! ऐसा क्षणिक-क्षणिक मत स्वतः प्रत्यक्ष से बाधित है इसलिए सत्य नहीं है। पर्यायें भले क्षणिक हो, द्रव्य क्षणिक नहीं, शाश्वत है, नित्य है। सिद्ध अपने में उत्पाद- व्ययशील हैं, फिर भी विशुद्ध चैतन्य सामान्य रूप द्रव्याकार के अन्वय के महात्म्य से सदा अविनाशी होने से वे नित्यता को नहीं छोड़ते हैं। इससे प्रतिक्षण विनश्वर एक संतानवर्ती चित्तक्षण ही परमार्थ सत् है, नित्य द्रव्य नहीं है, ऐसी मान्यता रखने वाले बौद्धों के मत का खंडन हो जाता है।

(5) नैयायिक व वैशेषिक मत की मान्यता है कि ज्ञानादि विशेष गुणों का अत्यन्त नाश हो जाना आत्मा की मुक्ति है। उनके इस मत का खंडन करने के लिए आचार्य महाराज ने **'अट्ठ गुणा'** यह विशेषण दिया है, जिसका अर्थ है- वे सिद्ध क्षायिक सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व नामक आठ गुणों से सहित हैं। ये गुण तो उपलक्षण हैं, जिससे उनमें तदनुसारी अनंतानंत गुणों का अंतर्भाव होता है।

(6) ईश्वर-सृष्टिवादी कहते हैं- ईश्वर सदा मुक्त होकर भी जगत् के बनाने में लगा रहता है। ईश्वर सृष्टि का कर्ता है। ऐसी मान्यता का खण्डन करने के लिए आचार्य महाराज ने **'किदकिच्चा'** यह विशेषण दिया है। जिसका अर्थ है कि वे सिद्ध कृतकृत्य हैं अर्थात् उन्होंने सकल कर्मों का क्षय और उनके कारणादि का अनुष्ठान रूप सब कृत्य पूर्ण कर लिया है। अब कुछ भी कार्य करना शेष नहीं है। जो करना था सब कर चुके और कृतकृत्य हो गये।

(7) मांडलिक मत वाले कहते हैं कि आत्मा ऊर्ध्वगमन स्वभावी होने से मुक्त होने पर कहीं भी ठहरता नहीं है अपितु सदा ऊपर-ऊपर ही जाता है। इस मत का खण्डन करने हेतु आचार्य महाराज ने **''लोयग्गणिवासिणो सिद्धा''** यह विशेषण दिया है जिसका अर्थ है- सिद्ध लोकाग्रवासी हैं। जिसमें जीवादि पदार्थ देखे जाते हैं, वह लोक है। इस प्रकार तीनों लोकों के अग्रभाग तनुवातवलय के अंत में निवास करते हैं। यद्यपि वे जिस स्थान से कर्मों का

क्षय करते हैं, कर्मों का क्षय करने के बाद उस क्षेत्र के ऊपर-ऊपर जाने का ही उनका स्वभाव है। मुक्त जीवों के स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने के कारण का उदाहरण बतलाते हुए आचार्य उमास्वामी महाराज तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के 10वें अध्याय के 6 और 7 नं. के सूत्र में कहते हैं-

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥6॥

आविद्धकुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्नि शिखावच्च ॥7॥

अर्थात् जीव ऊर्ध्वगमन स्वभावी है-

(1) पूर्व प्रयोग से- कुम्हार के चके की तरह।

(2) कर्म के संग के अभाव होने से- लेप से रहित तुंबी की तरह।

(3) बंध का उच्छेद होने से- एरण्ड बीज की तरह।

(4) तथागति परिणाम से- अग्निशिखा की तरह।

यद्यपि जीव ऊर्ध्वगमन स्वभावी है तथापि लोक के अग्र भाग के ऊपर जीव द्रव्य व पुद्गल द्रव्यों के गमन में सहकारी धर्मास्तिकाय का अभाव है। 'धर्मास्तिकायाभावात्' लोक के आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने पर भी जीव ऊपर नहीं जाता इसलिए उसका लोकाग्र में निवास करना ही युक्त है, अन्यथा लोक व अलोक के विभाग का अभाव प्राप्त होता है।

इस प्रकार सिद्धों की सिद्धि करते हुए आचार्य महाराज ने 7 विशेषणों के द्वारा परमत खण्डन व स्वमत मंडन किया है। यह आचार्यदेव की सिद्धों के प्रति की गई न्यायपरक भक्ति है। न्याय परमतों में फैली भ्रान्तियों का निराकरण कर तत्त्व का सम्यक् व्यपदेश करता है तथा हमारी अंतरंग श्रद्धा को अतिशय निर्मल करता है।

आज हम सिद्धों के आठ गुणों में से 6वें गुण अवगाहनत्व गुण को समझेंगे।

सम्मत्त णाण दंसण वीरिय सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरूलघुमव्वाबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥

अवगाहनत्व गुण का तात्पर्य है कि परस्पर में अन्य द्रव्यों को ठहरने के लिए स्थान देना। जैसे आकाश द्रव्य के अन्दर अवगाहनत्व गुण पाया है। जिससे वह सम्पूर्ण विश्व के द्रव्य व पदार्थों को स्थान देता है। जैसे–धर्मशाला यात्रियों को ठहरने के लिए होती है। Wating Room, Rest House, विश्राम गृह आदि जीवों को/मनुष्यों को ठहरने के लिए स्थान देते हैं वैसे ही आकाश द्रव्य सभी द्रव्यों को ठहरने का स्थान देता है। सम्पूर्ण लोकाकाश में अनंत द्रव्यों की जो अनंतानंत पर्यायें हैं, वे सब आकाश में ही अवकाश पाती हैं। आकाश का हृदय इतना विशाल है कि वह सम्पूर्ण द्रव्यों को ठहरने का स्थान देता है। किसी के लिए मना नहीं, सबके लिए हाँ। विश्राम गृह, धर्मशाला में तो सीमित लोग ही ठहर सकते हैं परन्तु आकाश सबको स्थान देता है इसलिए उसे असीम यह उपमा दी जाती है। उस असीम आकाश की ही तरह जब जीव आयु कर्म का क्षय कर अवगाहनत्व गुण प्रकट लेता है तो वे सिद्ध भी असीम हो जाते हैं। उनका हृदय इतना विशाल हो जाता है कि ''एक मांहि अनेक विराजे''। एक सिद्ध में अनंत सिद्ध विराजमान हो जाते हैं परन्तु लड़ाई–झगड़ा, धक्का-मुक्की नहीं होता। यदि आप प्रवचन–सभा में बैठे हो और दूसरा व्यक्ति बगल में जाकर बैठ जाये तो तुरन्त टोकते हैं आप। ए भाई ! दिखता नहीं, यहाँ जगह नहीं है। यदि दीक्षा आदि का विशेष प्रोग्राम हो तो व्यक्ति एक–दूसरे को धक्के लगाता है कि तुम वहाँ सरको, यहाँ मैं बैठूँगा और तू–तू, मैं–मैं प्रारम्भ हो जाती है। लेकिन वहाँ सिद्धालय में पहुँचने के बाद ऐसी अद्भुत शक्ति जीव के अन्दर पैदा हो जाती है कि एक में अनेक विराजें तो भी परेशानी नहीं; क्योंकि वे तो अपने–अपने स्वचतुष्टय में ही लीन रहते हैं।

उदाहरण– जैसे आपने एक गिलास को पूरा राख से भर दिया, उसमें इतनी राख भर दी कि अब एक कण भरने की भी जगह नहीं। यदि उस राख से भरे गिलास में आप एक सूई डालेंगे तो उसमें समा जायेगी। 10–50 सूई डालेंगे तो वे भी समा जायेंगी, क्योंकि राख में अवगाहनत्व शक्ति है।

(2) आप दूध में शक्कर मिलाते हैं तो वह उसमें मिल जाती है। पूरा गिलास दूध से भरा है। फिर भी यदि आप उसमें कितनी भी चीनी मिला लें

वह उसी दूध में घुल–मिल जाती है। चीनी का एक दाना, दूसरे से बैर-विरोध, लड़ाई–झगड़ा नहीं करता ठीक वैसे ही एक सिद्ध के अन्दर चीनी की तरह अनेकों सिद्ध प्रवेश करते जाते हैं, परन्तु कोई किसी को रोका-टोकी नहीं करते।

अब प्रश्न है कि मुक्त होने वाले जीवों के अन्तिम शरीर की अवगाहना अलग–अलग होती है कोई 500 धनुष की काया पाकर सिद्ध हुए तो कोई 400, कोई 7 हाथ तो कोई 9 हाथ। फिर वे एक–दूसरे को अवगाहन कैसे देते हैं तो यह नियम है कि सभी सिद्धों के सिर भाग लोक के अग्रभाग तनुवात वलय में समान होते हैं तथा नीचे का शरीर अपनी–अपनी अवगाहनानुसार लम्बा-चौड़ा होता है। जैसे N_2 Gas का गुब्बारा जिसका घनत्व O_2 से कम होता है। वह यदि आप अपने घर में छोड़ें तो सीलिंग तक जाता है, उससे आगे नहीं। अब गुब्बारा चाहे बड़ा हो या छोटा सबके सिर घर की छत से लगे रहते हैं, बाकी गुब्बारा नीचे रहते हैं। वैसे ही सिद्धों के सिर भाग समान होते हैं। जो लोकाग्र से सटे रहते हैं।

आयु कर्म के क्षय से सिद्धों में अवगाहनत्व गुण प्रकट होता है।

आयु कर्म– जिस कर्म के उदय से किसी विवक्षित पर्याय में जीव एक समय सीमा तक रहता है वह आयु कर्म है।

अथवा जिसके सद्भाव में जीवन और अभाव में मरण हो वह आयु है अर्थात् जो नरकादि भवों में रोक कर रखे वह आयु है। अथवा किसी विवक्षित पर्याय में जो कर्म एक समय सीमा तक रोके रहता है वह आयु कर्म है।

उदाहरण– जैसे पैरों में पड़ी बेड़ियाँ कैदी को परतंत्र बनाती हैं। उसी प्रकार आयु कर्म इस जीव को किसी विवक्षित पर्याय में रोक कर रखता है। जिस प्रकार पैरों की बेड़ियाँ टूटते ही कैदी मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति जैसा अपराध करता है उस अपराधानुसार धारायें लगती हैं। यदि छोटे–मोटे जेबकतरे हैं, चोरी–चपारी की है तो 2–5 साल की सजा होती है परन्तु यदि Murder मर्डर (प्राणहरण) किया है तो उम्र कैद या फाँसी की सजा सुनायी जाती है। उम्र कैद तो 20 वर्ष का होता है। उसी प्रकार

यह जीव जैसे भाव करता है, जैसे कर्म करता है तदनुसार गति में जाता है। आयु कर्म के चार भेद हैं–

(1) मनुष्यायु (2) देवायु (3) तिर्यंचायु (4) नरकायु।

(1) मनुष्यायु :– जिस कर्म के उदय से यह जीव मनुष्यों में जन्म लेकर एक समय सीमा तक रहता है वह मनुष्यायु है। अथवा मनुष्य आयु कर्म के उदय से मनुष्यों में जन्म लेकर समय सीमा तक उस पर्याय में रहना मनुष्यायु कर्म है। अथवा जिसके उदय से शारीरिक, मानसिक आदि सुख व दुःख से समाकुल मानुष पर्याय में जन्म हो वह मनुष्यायु कहलाती है।

(2) देवायु :– जिस आयु कर्म के उदय से प्रायः कर शारीरिक व मानसिक सुखों से युक्त देव पर्याय में जन्म होता है उसे देवायु जानना चाहिए।

(3) तिर्यंचायु :– जिसके उदय होने पर क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक आदि अनेक दुःखों के स्थानभूत तिर्यंच पर्याय में यह प्राणी जीवित रहता है वह तिर्यंच आयु है।

(4) नरकायु :– जिसके उदय में तीव्र शीत, उष्ण वेदनाकारक नरकों में दीर्घ काल तक प्राणी जीवित रहता है, वह नरक आयु है।

इन चारों आयुओं को चौरासी लाख उत्तर भेदों या 84 लाख योनियों में बाँटा जाता है, जिनमें जीव पाये जाते हैं। **'वारसाणुवेक्खा'** ग्रंथ में आचार्य **श्री कुन्दकुन्द** कहते हैं–

णिच्चिदर धादु सत्तय, तरु दस वियलिंदियेसु छच्चेव।
सुरणिरय तिरिय चउरो, चोद्दस मणुवे सदसहस्सा॥35॥

अर्थात् नित्य निगोद, इतर निगोद और धातु अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि व वायु इनमें से प्रत्येक की 7–7 लाख और वनस्पति काय की दस लाख, विकलेन्द्रिय (द्विइंद्रिय, त्रिइंद्रिय, चतुरिन्द्रिय) प्रत्येक की 2–2 लाख, देव नारकी व तिर्यंच की 4–4 लाख, मनुष्यों की चौदह लाख इस प्रकार कुल 84 लाख योनि होती है। यथा–

7ह्न6 =	42 लाख – एकेन्द्रिय
	10 लाख – वनस्पति काय
3ह्न2 =	6 लाख – विकलेन्द्रिय
3ह्न4 =	12 लाख – देव, नारकी व तिर्यंच
	14 लाख – मनुष्य
	84 लाख

तथा इन की कुल कोटि 199.5 करोड़ होती है। इनमें चारों आयु को धारण करने वाले जीव समाविष्ट होते हैं। ये चारों आयु क्यों बँधती है तो कारण बतलाते हुए **'तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ'** में आचार्य उमास्वामी महाराज कहते हैं–

1. **बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः॥15॥**

   बहुत आरम्भ व बहुत परिग्रह रखने से नरकायु का आस्रव होता है।

2. **माया तैर्यग्योनस्य॥16॥**

   मायाचारी से तिर्यंच आयु का आस्रव होता है।

3. **अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य॥17॥**

   अल्प आरम्भ व अल्प परिग्रह रखने से मनुष्यायु का आस्रव होता है।

4. **स्वभावमार्दवं च॥18॥**

   स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायु के आस्रव का कारण है।

5. **निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्॥19॥**

   शील रहित व व्रत रहित होना सब आयुओं के आस्रव का कारण है।

6. **सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसिदेवस्य॥20॥**

   सरागसंयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा व बालतप; ये देवायु के आस्रव के कारण हैं।

7. **सम्यक्त्वञ्च॥21॥**

   सम्यग्दर्शन भी देवायु के आस्रव का कारण है।

आयु कर्म का बंध :-

आयु कर्म को छोड़ शेष कर्म तो प्रतिक्षण बंधते हैं; परन्तु आयु कर्म का बंध जीवन में एक बार ही होता है। वह भी आयु के त्रिभाग में होता है। जब बंधापकर्ष काल आयु के त्रिभाग में आता है तब नवीन आयु का बँध होता है। ऐसे बंधापकर्ष काल जीवन में अधिक से अधिक 8 बार आते हैं। यदि इनमें आयु कर्म नहीं बँधता तो मरण के पूर्व के अंतर्मुहूर्त में नियम से अगली आयु बँध जाती है। वह **'असंक्षेपाद्धा काल'** कहलाता है।

मान लीजिए किसी की आयु 90 वर्ष की है।

इस 90 का त्रिभाग 30+30+30

60 वर्ष के बाद प्रथम अंतर्मुहूर्त के प्रथम समय में पहला बंधापकर्ष काल आयेगा (60 वर्ष 1 समय)।

यदि इसमें आयु का बंध नहीं हुआ तो शेष बचे 30 वर्षों का त्रिभाग करेंगे 10+10+10 अर्थात् 20 वर्ष अंतर्मुहूर्त बाद यानि 60+20 = 80 वर्ष अंतरमुहूर्त बाद दूसरा बंधापकर्ष आयेगा। यदि उसमें नवीन आयु नहीं बंधी तो 10 वर्ष का त्रिभाग करेंगे। 80+6+8 माह= 86 वर्ष 8 माह अंतर्मुहूर्त के बाद तीसरा बंधापकर्ष आयेगा। उसमें भी नवीन आयु नहीं बंधी तो शेष बचे 3 वर्ष 4 माह का पुनः त्रिभाग करेंगे।

तो 2 वर्ष, 2 माह 20 दिन+86 वर्ष 8 माह= 88 वर्ष 10 माह 20 दिन।

अर्थात् चतुर्थ बंधापकर्ष 88 वर्ष 10 माह व 20 दिन की आयु में आयेगा। उसमें भी नवीन आयु नहीं बँधी तो शेष बचे 1 वर्ष 1 महीना व 10 दिन का पुनः त्रिभाग करेंगे तो 8 माह 26 दिन 16 घंटे+88 वर्ष 10 माह 20 दिन= 89 वर्ष 6 माह 26 दिन 16 घंटे की आयु में पाँचवाँ बंधापकर्ष आयेगा।

उसमें भी नवीन आयु नहीं बँधी तो शेष बचे 4 माह 13 दिन 8 घंटे का त्रिभाग 2 माह 28 दिन 21 घंटा 20 मिनिट – 88 वर्ष 6 माह 26 दिन 16 घंटे + 2 माह 28 दिन, 21 घंटा 20 मिनिट = 89 वर्ष 9 माह 25 दिन 3

घंटा 20 मिनिट की आयु में छटवाँ बंधापकर्ष आयेगा। शेष बचे 1 माह 14 दिन 10 घंटे 40 मिनिट के पुनः त्रिभाग करेंगे तो 29 दिन 14 घंटे 53 मिनिट 20 सैकेण्ड 89 वर्ष 9 माह 25 दिन 3 घंटा 20 मिनिट + 29 दिन 14 घंटे 53 मिनिट 20 सैकेण्ड = 89 वर्ष 10 माह 24 दिन 18 घंटे 13 मिनिट 20 सैकेण्ड के बाद सातवाँ बंधापकर्ष आयेगा। उसमें भी नयी आयु नहीं बँधी तो शेष बचे 14 दिन 19 घंटे 26 मिनिट 20 सैकेण्ड का त्रिभाग करेंगे। 9 दिन 20 घंटे 57 मिनिट + 43 सैकण्ड आयेगा।

89 वर्ष 10 माह 24 दिन 18 घंटे 13 मिनिट 20 सैकण्ड +

9 दिन 20 घंटे 57 मिनिट + 43 सेकण्ड = 89 वर्ष 11 माह 4 दिन 15 घंटे 11 मिनिट 3 सैकेण्ड में आठवाँ बंधापकर्ष आयेगा। उसमें भी नवीन आयु न बंधी तो आयु के अन्तिम अंतर्मुहूर्त में नियम से ही नवीन आयु का बंध हो ही जाता है।

90 वर्ष की आयु में आने वाले 8 बंधापकर्ष का समय :-

पहला बंधापकर्ष – 60 वर्ष प्रथम अंतर्मुहूर्त

दूसरा बंधापकर्ष – 80 वर्ष प्रथम अंतर्मुहूर्त

तीसरा बंधापकर्ष – 86 वर्ष 8 माह प्रथम अंतर्मुहूर्त

चौथा बंधापकर्ष – 88 वर्ष 10 माह 20 दिन के बाद प्रथम अंतर्मुहूर्त

पाँचवाँ बंधापकर्ष – 89 वर्ष 6 माह 26 दिन 16 घंटे प्रथम अंतर्मुहूर्त

छटवाँ बंधापकर्ष – 89 वर्ष 9 माह 25 दिन 3 घंटा 20 मिनट प्रथम अंतर्मुहूर्त

सातवाँ बंधापकर्ष – 89 वर्ष 10 माह 24 दिन 18 घंटा 13 मि. 20 सै. प्रथम अंतर्मुहूर्त

आठवाँ बंधापकर्ष – 89 वर्ष 11 माह 4 दिन 15 घंटे 11 मि. 3 सै. प्रथम अंतर्मुहूर्त

इस प्रकार जो सम्पूर्ण आस्रव व बंध प्रक्रिया को समझ लेता है वह सावधान हो जाता है और संयम पथ का अनुगमन करता है तथा उस आयु कर्म का क्षय कर अवगाहनत्व गुण को प्रकट कर लेता है, परम सिद्ध दशा को प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार पिंजरे का पंछी, पिंजरे से बाहर जाने को फड़फड़ाता है। फिर चाहे पिंजरे में कोई दूध, मलाई व काजू की बनी खीर भी खिलाये तो उसे अच्छी नहीं लगती। उसी प्रकार आत्मा मुक्ति हेतु फड़फड़ाता है। कैदी पैरों की बेड़ियाँ तोड़ कैद से मुक्त होना चाहता है। जानवर जो रस्सी से खूँटे के द्वारा बंधे रहते हैं। वे उस बंधन को तोड़ भाग जाना चाहते हैं और जब जेलर उन बेड़ियों से कैदी को मुक्त करता है, जानवर रस्सी से मुक्त होता है अथवा पिंजरे खुलते ही पंछी उससे उड़ जाता है; वैसे ही घातिया कर्मों को नाशने वाले अरिहन्त परमात्मा आयु कर्म के बंधन को तोड़ देते हैं। योगनिरोध करते हैं तथा उपान्त्य समय में 72 व अंत समय में 13 प्रकृतियों इस प्रकार शेष बची 85 कर्मप्रकृतियों का 14 वें गुणस्थान में क्षय करते हैं तथा अ, इ, उ, ऋ, लृ- इन पंच ह्रस्व अक्षर प्रमाण स्वल्प काल में सम्पूर्ण कर्मों की बेड़ियों को तोड़कर मुक्ति-गगन का बिहारी बनकर सिद्धालय में पहुँच जाता है। परम सिद्ध दशा को पा लेता है।

आज हम परम सिद्ध दशा को प्राप्त उन सिद्ध परमेष्ठियों की भक्ति/आराधना कर रहे हैं। उनकी भक्ति के द्वारा हम भी उन जैसी ही परम सिद्ध दशा को प्राप्त कर सकें- इसी पुनीत भावना के साथ...

॥ 1008 महावीर भगवान की जय॥

ऊँच-नीच का भेद मिटाओ

अगुरुलघुत्व गुणयुक्त सिद्ध भगवान

(गोत्र कर्म का चित्र)

अगुरुलघु को ढाँकता, गोत्र कर्म है नाम,
गोत्र कर्म का क्षय किया, प्रभु अगुरुलघुवान।
सिद्धों का गुण है महा, ध्याओ चेतनराज,
तुम भी पा सकते वही, अतुल सुखों का राज॥

"अगुरुलघुत्व गुण : ऊँच-नीच का भेद मिटाओ"

सिद्धाष्ट गुण प्रवचनमाला के अन्तर्गत हम सिद्ध परमेष्ठियों की आराधना कर रहे हैं। आचार्य श्री पूज्यपाद महाराज ने 'सिद्ध भक्ति' में सिद्ध परमेष्ठियों की आराधना करते हुए कहा है-

तादृक् संपतसमेता विविधनयतपः संयमज्ञान-दृष्टि-
चर्या सिद्धाः समन्तात्, प्रवितत् यशसो विश्व देवाधिदेवाः।
भूता भव्या भवन्तः, सकल जगति ये स्तूयमाना विशिष्टै-
स्तान सर्वान् नौम्यनन्तान्, निजिगमिषुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम्॥9॥

'ये तादृक संपत् समेता' अर्थात् जो सिद्ध भगवान अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख व अनंत वीर्य आदि अनंत गुणों रूपी निधि के स्वामी हैं।

'विविध नय तपः संयम ज्ञान दृष्टि चर्या सिद्धाः' जो अनेक प्रकार के नय, तप, संयम, ज्ञान, दर्शन/सम्यक्त्व व चारित्र से सिद्ध हुए हैं।

'नय से सिद्ध' यानि नैगम-संग्रह आदि विविध नय, व्यवहार-निश्चय नय का आलंबन लेकर जिन्होंने सिद्धि प्राप्त की है, वे नयसिद्ध हैं।

'तप सिद्ध' अंतरंग-बहिरंग तप, संयम सिद्ध, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय व यथाख्यात संयम के बल से घोर तपश्चरण कर जो सिद्धि को प्राप्त हुए हैं वे संयमसिद्ध हैं।

'ज्ञान सिद्ध' 12 अंग व चौदह पूर्व रूप सम्पूर्ण द्वादशांग का ज्ञान प्राप्त कर, श्रुतकेवली दशा को प्राप्त कर जो सिद्धि को प्राप्त हुए अथवा केवलज्ञान प्राप्त कर पश्चात् सिद्धि को प्राप्त हुए वे ज्ञान सिद्ध हैं।

'दर्शन सिद्ध' केवलदर्शन को प्राप्त करने के उपरान्त जो सिद्धि को प्राप्त हुए हैं वे दर्शन सिद्ध हैं।

'चारित्र सिद्ध'- (1) प्रत्युत्पन्न नय की दृष्टि से न तो चारित्र से सिद्धि होती है और न अचारित्र से अर्थात् वर्तमान प्रत्युत्पन्न नय की दृष्टि से

चारित्र-अचारित्र के विकल्प रहित 'निर्विकल्प भाव' से मुक्ति होती है। (2) ऋजुसूत्र नय से यथाख्यात चारित्र से जो सिद्ध हुए हैं। (3) व्यवहार नय की अपेक्षा पाँचों चारित्र या परिहारविशुद्धि चार चारित्रों से मुक्ति होती है। अथवा इन चारित्रों को धारण कर जो मुक्ति/सिद्धि को प्राप्त हुए हैं वे चारित्र सिद्ध कहलाते हैं।

'समन्तात् प्रवितत यशसः' अर्थात् जिनका यश चारों दिशाओं 'दिक्-दिगन्तराल' में फैला है।

'विश्वदेवाधिदेवाः' सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर जो देवों के भी देव, सुर, असुर, नागेन्द्र, चक्रवर्ती आदि के द्वारा पूजनीय अर्थात् देवाधिदेव हैं, तीनों लोकों के स्वामी हैं।

'सकल जगति विशिष्टः स्तूयमानैः' सारे विश्व में/समस्त संसार में तीर्थंकर जैसे विशिष्ट महापुरुष के द्वारा जो स्तुति को प्राप्त हुए हैं। तीर्थंकर गृहस्थावस्था में कभी किसी मंदिर के दर्शन करने नहीं जाते, वे मात्र सिद्धों को स्मरण करते हैं। 'नमः सिद्धेभ्यः' बोलकर ही वस्त्राभूषण सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग व पंचमुष्टि लौंच कर पाँच महाव्रतों को धारण करते हैं। ऐसे महान् पुरुषों के द्वारा भी जो स्तुति को प्राप्त हैं।

ऐसे **'भूता भव्या भवन्तः'** जो भूतकाल में हो चुके हैं, भविष्यत् काल में होंगे तथा वर्तमान में सिद्धि को प्राप्त हो रहे हैं, **'तान् सर्वान्'** उन सम्पूर्ण सिद्ध परमेष्ठियों को **'अरं'** शीघ्र ही **'तत्स्वरूपम् निजिगमिषुः'** उस सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा से मैं आचार्य पूज्यपाद **'त्रिसंध्यम् नौमि'** प्रातः, मध्याह्न व सायं तीनों संध्याओं में, त्रिकाल में नमस्कार करता हूँ।

भक्त, भगवान जैसा बनना चाहता है, भक्त के लिए भगवान आदर्श स्वरूप होते हैं इसलिए वह उनके समान गुणों को पाने उनकी वंदना, स्तुति, भक्ति करता है। **'वंदे तद्गुणलब्धये'** हे प्रभु ! आप जैसा गुणवान बनने मैं आपकी वंदना कर रहा हूँ।

सिद्धार्चना करते हुए उनके अष्ट गुणों में से आज हम सातवें गुण अगुरुलघुत्व गुण को देखें।

'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' में 6 सामान्य गुण बताये हैं :-अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, अगुरुलघुत्व। जबकि 'आलाप-पद्धति' ग्रन्थ में **आचार्य देवसेन महाराज** ने 10 सामान्य गुण कहे हैं :- अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, अगुरुलघुत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व। इनमें से 1 अगुरुलघु गुण है। अगुरुलघु गुण इन्द्रियों के ग्राह्य नहीं है, सूक्ष्म है, चर्म चक्षु से नहीं देखा जाता, वचनों के अगोचर हैं, प्रत्येक क्षण में वर्तमान है, आगम प्रमाण से जाना जाता है इसलिए वह अगुरुलघु गुण कहलाता है।

'आलाप-पद्धति' ग्रन्थ में जिस अगुरुलघु गुण की चर्चा की है- उसके अनुसार प्रत्येक द्रव्य में अर्थ पर्याय का षट्गुणपतित हानि- वृद्धि रूप जो परिणमन होता है, वह अगुरुलघु सामान्य गुण के कारण होता है।

षट्गुणपतित हानि- वृद्धि में 6 वृद्धि रूप व 6 हानि रूप- इस प्रकार 12 प्रकार की पर्यायें होती हैं।

षट् वृद्धियाँ :- (1) अनंत भाग वृद्धि (2) असंख्यात भाग वृद्धि (3) संख्यात भाग वृद्धि (4) संख्यात गुण वृद्धि (5) असंख्यात गुण वृद्धि (6) अनंत गुण वृद्धि।

षट् हानि रूप पर्यायें :- (1) अनंत भाग हानि (2) असंख्यात भाग हानि (3) संख्यात भाग हानि (4) संख्यात गुण हानि (5) असंख्यात गुण हानि (6) अनंत गुण हानि।

इसके द्वारा अर्थ पर्याय का षट्गुणस्थानपतित हानि-वृद्धि रूप में पर्याय परिणमन होता है। घड़ी में तीन काँटे होते हैं। सबसे तेज सैकेण्ड का काँटा चलता है। मिनिट व घंटे के काँटे धीरे-धीरे चलते हैं। उस घड़ी में चाबी भरी होती है जिससे वे काँटे गति करते हैं। उसी प्रकार षट्गुणस्थानपतित

हानि-वृद्धि रूपी चाबी के माध्यम से अर्थ पर्याय का परिणमन (काँटों की गति) होता है।

जितने भी पर्यायवान द्रव्य हैं उनके गुण भी अवश्य होते हैं। सामान्य व विशेष के भेद से गुण दो प्रकार के होंगे; क्योंकि 'गुणपर्ययवद् द्रव्यम्'।

द्रव्य में गुण व पर्यायें पायी जाती हैं।

'गुणविकाराः पर्यायाः' गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं।

एक द्रव्य की अनेक पर्यायें हो सकती हैं। पर्यायें प्रतिक्षण परिणमन करती हैं। प्राणी बालक से युवा हो जाता है, यह स्थूल परिणमन है। यद्यपि पर्याय में सूक्ष्म परिणमन प्रति समय हो रहा है परन्तु उसे हम पकड़ नहीं पाते, वही अर्थ पर्याय कहलाती है। एक-एक क्षण में हुआ परिवर्तन ही बालक को युवा बना देता है। जैसे पत्तों के ढेर में पिन लगाये तो क्षणभर में सारे पत्तों का भेदन हो जाता है; परन्तु वह सूई एक-एक पत्ते से होकर गुजरी है। एक पत्ते से गुजरने में कुछ समय लगा होगा; परन्तु उस सूक्ष्म परिणमन को हम पकड़ नहीं पाते।

द्रव्यों में अगुरुलघुगुण के कारण षट्गुणस्थानपतित हानि-वृद्धि होती है। यह गुण शाश्वत है। यह सारी उत्पाद-व्यय की परम्परा शाश्वत चलती रहती है। इससे द्रव्य का द्रव्यत्व (अस्तित्व) गुण बना रहता है।

'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'

जिस गुण के कारण द्रव्य का द्रव्यपना कायम रहे, द्रव्य द्रव्यान्तर में न बदल जाये, पर्याय का पर्यायपना बना रहे, पर्याय पर्यान्तर में न बदले वह अगुरुलघुगुण है। द्रव्य व पर्यायों में यदि यह गुण न होता तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में बदल जाता। जबकि ऐसा नहीं होता। 'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रंथ के आठवें अध्याय में आचार्य उमास्वामी महाराज ने नाम कर्म के 93 भेदों में अगुरुलघु नाम कर्म दिया है।

अगुरुलघु नाम कर्म :- जिस कर्म के उदय से जीव (संसारी जीव)

लोहे के पिण्ड के समान गुरु (भारी) होने से न तो नीचे गिरता है और न ही अर्कतूल (रुई का ढेर) के समान लघु होने से हवा में उड़ता है।

नामकर्म की अगुरुलघु कर्म प्रकृति है, जो प्रत्येक संसारी प्राणी में पायी जाती है। सभी शरीरधारियों में वह नामकर्म पाया जाता है। इसी अगुरुलघु गुण के कारण किसी को अपना शरीर भारी या हल्का नहीं लगता। हाथी को अपना शरीर भारी नहीं लगता। हमारे अन्दर अगुरुलघु गुण है इसलिए कोई कितना भी मोटा हो उसे अपना शरीर भारी नहीं लगता है। 5-10 किलो का हाथ, 20 किलो का पैर हमें भारी नहीं लगता। हाथ को ऊपर-नीचे कर लेते हैं। यदि हमें अपने हाथों से 10-20 किलो की वस्तु उठाना पड़े तो थक जाते हैं परन्तु 10-20 किलो के अपने हाथ-पैर हमें भारी नहीं लगते; क्योंकि हमारे अन्दर अगुरुलघु गुण है। हमारा शरीर हमें लोहे की तरह भारी व रुई की तरह लघु भी नहीं लगता। यदि यह गुण हमारे अन्दर न होता तो भारी होने से जमीन में गिर जाते और यदि हल्का होता तो रुई की तरह जरा-सी हवा चलने पर हम कहीं भी उड़ जाते।

जीवत्व या स्वाभाविक गुणों में एक अगुरुलघु गुण जो कि सिद्धों का मूलगुण है यह गोत्रकर्म के क्षय से उत्पन्न होता है। अगुरुलघु गुण गोत्र कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है। गोत्र कर्म अगुरुलघु गुण को उत्पन्न नहीं होने देता। यहाँ हम जिस अगुरुलघु गुण की चर्चा कर रहे हैं, वह गोत्र कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाला सिद्धों का स्वाभाविक मूलगुण है।

गोत्र कर्म :- आचार्य श्री नेमीचन्द्र सिद्धान्ताचार्य अपने कर्मकाण्ड ग्रन्थ में कहते हैं-

संताणकमेणागय जीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा।
उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं॥13॥

अर्थात् संतान क्रम से चले आये जीव के आचरण को गोत्र कहते हैं।

उच्च व नीच आचरण से उच्च व नीच गोत्र होता है। पूर्वोपार्जित कर्मों से संबंध है। एक छोटे बच्चे का जन्म माना किसी शूद्र परिवार में हुआ है। उसका आचार-विचार अभी कुछ नहीं परन्तु पूर्व में जो कर्म उपार्जित किया था, उसके उदय आने पर वह शूद्र कुल में उत्पन्न होता है।

इसके अलावा हमारा आचरण कुल परम्परा से भी संबंध रखता है। नीच कुलोत्पन्न का आचरण निम्न ही होता है तथा उच्च कुलोत्पन्न का आचरण उच्च होता है। उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति के व्यक्तित्व को देखकर पता लगा लिया जाता है कि वह उच्च कुलीन है। राजपुत्र भले वन ही में क्यों न हो फिर भी वह अपने उच्च आचरण से जान लिया जाता है।

कुल परम्परा के आचरण के संबंध में एक कहानी आती है-

एक सियार का बच्चा किसी कारण अपनी माँ से बिछुड़ गया तथा सिंहनी के पास पहुँच गया। सिंहनी ने मातृ-स्नेह वश अपने बच्चे की तरह उसका पालन किया। वह सिंहनी के बच्चों के साथ खेला करता था। एक दिन खेलते हुए वे सभी बच्चे एक जंगल में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने हाथियों का समूह देखा। उस समूह को देख सिंहनी के बच्चे तो हाथी का सामना करने आगे आये तथा सियार का बच्चा जिसमें अपने कुल के डरपोकपने का संस्कार भरा था, हाथी को देखकर भागने लगा। तब अन्य सिंहनी के बच्चे भी उस सियार के बच्चे को अपना बड़ा भाई समझकर उसका अनुसरण करते हुए अपनी माता के पास लौट आये और उस सियार की शिकायत की कि माँ इसने हमें शिकार से रोका। तब सिंहनी ने उस सियार के बच्चे को एक श्लोक कहा-

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रक !
यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते॥

हे पुत्र ! तू शूरवीर है, विद्यावान है, देखने में सुन्दर है, किन्तु जिस कुल में तुम उत्पन्न हुए हो, उस कुल में हाथी नहीं मारे जाते हैं। अतः तू यहाँ से भाग जा, नहीं तो तेरी जान नहीं बचेगी।

तात्पर्य यह है कि अपने पूर्वजों से प्राप्त संस्कार, कुल का, वंश-परम्परा का प्रभाव होता है। यद्यपि खान-पान, बाह्य वातावरण का भी विचारों पर प्रभाव पड़ता है परन्तु कुल का आनुवंशिक प्रभाव विशेष होता है। विज्ञान आनुवंशिकता को स्वीकारता है कि माता-पिता के गुण/संस्कारों का प्रभाव बच्चों पर देखा जाता है। इसीलिए क्षत्रिय कुलोत्पन्न बच्चे शूरवीर होते हैं।

आचरण से भी व्यक्ति उच्च-नीच गोत्र का आस्रव करता है। कभी-कभी उच्च कुलोत्पन्न जीव नीच कार्य करता है। जैन होकर भी जूते-चप्पल की दुकान, बाल कटिंग (शैलून) Beauty Parlour खोल देते हैं। कोई नीच कुलों में विवाह करते हैं, अंतरजातीय विवाह, विधवा विवाह करते हैं। पहले समय में अपने समान जाति वाले के साथ विवाह किया जाता था। समान जाति में संबंध होने से रिश्तों में मजबूती रहती है। कोई विपत्ति नवीन दम्पत्ति पर आये तो सब सहयोगी होते हैं। परस्पर में लड़ाई-झगड़ा हो तो घर-परिवार वाले समझा-बुझाकर मना लेते हैं, रिश्ता टूटने नहीं देते।

यदि आपने अंतरजातीय विवाह किया है तो अब आपका कोई सहयोग नहीं करता, उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है। Love Marriage किया है तो जितने जल्दी संबंध बना उतने ही जल्दी ब्रेक हो जाता है, तलाक हो जाता है, सारा जीवन बर्बाद हो जाता है। जाति व कुल के संस्कार अपना प्रभाव डालते हैं।

राजा-महाराजाओं के उदाहरण मिलते हैं। माता-पिता बच्चों को सुसंस्कार दे, अंतरजातीय विवाहों से रोकें, उन्हें समझायें, अपने कुल के गौरवपूर्ण संस्कारों को बच्चों में भरें। उन्हें अपने कुल का गौरव उत्पन्न करायें जो कुल के गौरव को समझता है वह उसे लजाता नहीं। उच्चकुली शराब पिये, व्यसनों का सेवन करे तो वह नीच कुल का ही माना जाता है।

लड़की वाले लड़का देखने जाते हैं तो पता करते हैं कि वह शराब आदि दुर्व्यसनों, अभक्ष्यों का सेवन तो नहीं करता, लड़की को देखने वाले लड़की के आचरण को देखते हैं- बेटी धार्मिक हैं या नहीं।

इसलिए अपने आचरण को सुधारना चाहिए। जो सद् आचरण करते हैं, वे ही भविष्य में उच्च गोत्र कर्म का बंध करते हैं। गोत्र किसे कहते हैं ? तो 'गोत्र' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है-

'उच्चं नीचं गमयतीति गोत्रम्' अर्थात् जो उच्च और नीच का आचरण कराता है वह गोत्र कहलाता है। गोत्रकर्म को शास्त्रों में कुम्भकार की उपमा दी जाती है। जैसे कुम्भकार छोटे-बड़े सब प्रकार के घड़े बनाता है, वैसे ही गोत्र कर्म जीव को उच्च-नीच कुलों में पहुँचाने का काम करता है।

गोत्र कर्म के भेद :- (1) उच्च गोत्र, (2) नीच गोत्र।

उच्च गोत्र :- जिसके उदय से लोकपूजित कुलों में जन्म होता है वह उच्च गोत्र है।

नीच गोत्र :- जिसके उदय से लोकनिंदित कुलों में जन्म होता है वह नीच गोत्र कहलाता है।

नीच गोत्र का आस्रव किस कारण से होता है तो 'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रंथ के 6वें अध्याय में आचार्य श्री उमास्वामी महाराज कहते हैं-

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥25॥

परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का उच्छादन और असद्गुणों का उद्भावन, ये नीच गोत्र के आस्रव के कारण हैं-

परनिन्दा :- दूसरों के दोषों को प्रकट करना परनिन्दा है, परन्तु गुरु से किसी के (साधर्मी के) दोष कहना निन्दा नहीं है।

आत्मप्रशंसा :- अपने निज गुणों की प्रशंसा करना, मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ- यह आत्मप्रशंसा है।

परनिन्दा :- दूसरों की निन्दा व अपनी प्रशंसा करने वाले कदम-कदम पर मिल जायेंगे। दो बैठकर परस्पर में बुराई अधिक करते हैं, अच्छाइयों की चर्चा कम होती है। गाँधी जी के तीन Monkey (बंदर) हैं। एक कहता है

बुरा मत देखो, दूसरा कहता है– बुरा मत बोलो। तीसरा कहता है– बुरा मत सुनो। चौथा मेरा बन्दर है जो कहता है– बुरा मत सोचो।

बुरा बोलने, देखने, सुनने, सोचने से नीच गोत्र का बंध होता है। नारकी तिर्यंच म्लेच्छ मनुष्य नीच गोत्र का बंध करते हैं। बहुत से लोक प्रशंसा चाहते हैं, प्रशंसा सुनने से अभिमान जगता है। जो प्रशंसा चाहते हैं, यदि न मिले तो स्वयं अपनी प्रशंसा करते हैं, परन्तु–

''बड़े बढ़ाई न करें, बड़े न बोले बोल।
हीरा मुख से न कहे, लाख हमारो मोल॥''

जो बड़े (महान्) पुरुष होते हैं वे अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करते। हीरा नहीं कहता कि मैं लाखों का हूँ, उसकी कीमत बताने वाला जौहरी होता है। फूल नहीं कहता कि मैं सुगन्धित सुन्दर हूँ, माली उसकी कीमत दुनियाँ को बताता है।

खदान से पहले कंकरीट निकालते हैं, फिर उसे धोते हैं, फिर उन पत्थरों का निरीक्षण करते हैं, लाखों में कोई एक ही हीरा होता है।

जैसे हीरा अपनी कीमत नहीं आँकता अपितु दुनियाँ आँकती हैं। उसी प्रकार हमें गुणों का संग्रह करना है तो गुणों को एकत्रित करते जाओ, अपने गुणों की प्रशंसा मत करो। अपने गुणों की प्रशंसा करने से गुण नष्ट हो जाते हैं। कार्य करने वाले नाम की अपेक्षा नहीं रखते, जो नाम की अपेक्षा रखते हैं वे काम के नहीं होते।

नाम चाहने वाला Video व Camera के सामने–सामने घूमता हैं। जो वास्तविक काम करने वाले होते हैं, उन्हें सब याद करते हैं। जो मात्र सम्मान चाहते हैं, उन्हें कोई पसन्द नहीं करता। व्यक्ति फोटो खिंचाता है, ताकि दुनियाँ को दिखा सकूँ, मैंने ऐसा किया है। नींव का पत्थर दिखता नहीं परन्तु कीमत उसकी अधिक है। बाहर के शो के पत्थर सजावट में लगे होते हैं परन्तु वे काम के नहीं मात्र देखने के हैं।

सद्गुणोच्छादन :– उच्छादन का अर्थ है–लोपन करना। सद् कहते हैं विद्यमान को। दूसरों के ज्ञान, तप आदि सद्गुणों का लोपन करना सद्गुणोच्छादन है।

असद्गुणोद्भावन :– उद्भावना का अर्थ है–प्रकट करना। असद् कहते हैं–अविद्यमान को। अपने अविद्यमान झूठे गुणों का प्रकट करना असद्गुणोद्भावन है।

सूत्र में चकार शब्द से अन्य कारण भी ग्रहण करना चाहिए– आठ प्रकार का मद करना, दूसरों का अपमान करना, दूसरों की हँसी करना, देव-शास्त्र-गुरु की आसातना करना आदि।

उच्च गोत्र के आस्रव के कारण :–

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य॥26॥

नीच गोत्र के आस्रव के विपरीत कारण– परप्रशंसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणों का उद्भावन, असद्गुणों का उच्छादन तथा नम्र वृत्ति और अनुत्सेक ये उच्च गोत्र के आस्रव के कारण है।

(1) परप्रशंसा :–दूसरों के गुणों की प्रशंसा करना।

परप्रशंसा :–जो दूसरों के गुणों की प्रशंसा करते हैं तथा आत्मनिन्दा करते हैं। मैं क्या कर सकता हूँ। हे प्रभु ! शक्ति विहीन हूँ, फिर भी आपकी भक्ति के वश होकर मैं यह स्तुति कर रहा हूँ। आचार्य मानतुंग महाराज भक्तामर पाठ में प्रभु के समक्ष अपनी लघुता प्रकट करते हैं। अपने गुणों को ढाँकना चाहिए तथा दूसरों के गुणों को प्रकट करना चाहिए। दूसरों के गुणों की प्रशंसा करने से उसके गुणों की प्राप्ति हमें भी हो सकती है। अपने गुणों को छिपाकर रखना चाहिए, क्योंकि गुणों को प्रकट करने से वे नष्ट हो जाते हैं।

(2) आत्मनिन्दा :– अपने दोषों को प्रभु व गुरु की साक्षी पूर्वक अथवा स्वसाक्षी में प्रकट करना।

(3) सद्गुणों का उद्‌भावन :- दूसरों में उपस्थित सद्गुणों को प्रकट करना।

(4) असद्गुणों का उच्छादन :- दूसरों के दोषों को ढँकना।

नम्र वृत्ति :- जो गुणों में उत्कृष्ट हैं, उनके प्रति विनय से नम्र रहना नीचैर्वृत्ति है। इसे ही नम्र वृत्ति कहते हैं।

अनुत्सेक :- ज्ञानादि की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हुए भी उसका मद नहीं करना अनुत्सेक है।

इस प्रकार नीच गोत्र के आस्रव के हेतुओं को जान कर उनसे बचना चाहिए तथा उच्च गोत्र के आस्रव के हेतुओं में प्रवृत्ति करना चाहिए। जब अरहंत केवली इन उच्च-नीच गोत्र कर्म को चतुर्थ शुक्ल ध्यान के बल से नष्ट कर देते हैं तो सिद्धावस्था में अगुरुलघु गुण से युक्त हो जाते हैं। ऊँचे व नीचे का भेद, छोटे-बड़े का भेद संसारी अवस्था में होता है। चाहे कोई आज सिद्ध हुआ हो या 100 वर्ष पूर्व परन्तु उनमें छोटे-बड़े का भेद नहीं होता। सबके गुण समान होते हैं। अगुरुलघु गुण के कारण उच्च-नीच का भेद समाप्त हो गया है। जब गोत्र कर्म नष्ट हो जाता है तो आत्मा का सहज अगुरुलघु गुण प्राप्त हो जाता है। मनुष्यों में ऊँच-नीच का भेद होता है, सिद्धों में नहीं। हम अगुरुलघु गुणधारी सिद्धों को श्रद्धा भक्ति से नमस्कार करते हैं तथा उन जैसे गुणों को पाने की भावना रखते हैं। हम सभी उस गुण को पायें, इसी भावना के साथ....

॥ 1008 महावीर भगवान की जय॥

बाधा को दूर भगाओ

अव्याबाधत्व गुणयुक्त सिद्ध भगवान

(वेदनीय कर्म का चित्र)

घाते अव्याबाध को, वेदनीय पहचान,
वेदनीय घाते लिया, अव्याबाध महान।
सिद्धों का गुण है महा, ध्याओ चेतनराज,
तुम भी पा सकते वही, अतुल सुखों का राज॥

''अव्याबाधत्व-गुण : बाधा को दूर भगाओ''

सिद्धाष्ट गुण प्रवचनमाला का आज अन्तिम दिवस है। अष्टाह्निका पर्व की अत्यन्त पुनीत बेला जहाँ हम **'सिद्धचक्र महामण्डल विधान'** के माध्यम से सिद्धार्चना कर रहे हैं। सिद्धों का आज हम अंतिम अव्याबाधत्व गुण समझेंगे। सिद्धों की स्तुति करते हुए **'सिद्ध भक्ति'** में आचार्य पूज्यपाद महाराज कह रहे हैं :-

नार्थः क्षुत्-तृड्-विनाशाद्, विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या।
नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्नहि मृदु, शयनै-र्ग्लानि निद्राद्यभावात्॥
आंतकार्तेरभावे, तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्।
दीपानर्थक्यवद् वा, व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते॥8॥

अर्थात् **'आंतकार्तेरभावे तदुपशमन सद्भेषजानर्थतावद्'** सिद्ध परमेष्ठी की सिद्धपर्याय पूर्ण स्वातन्त्र्य की प्रतीक है। उस पर्याय में पर की अपेक्षा ही नहीं है। संसारी जीवों के असातावेदनीय के उदय से क्षुधा, पिपासा आदि पीड़ाएँ उत्पन्न होती हैं, अतः षट्रस युक्त विविध व्यंजन व पेय पदार्थों से हम शरीर की रक्षा करते हैं। सिद्ध परमेष्ठी जिन के क्षुधा, तृषा आदि दोषों का पूर्ण अभाव हो गया है, अतः उन्हें विविध प्रकार के भोजन व पानी आदि से कोई प्रयोजन नहीं रहता। इसीलिए पूज्यपाद महाराज ने **'विविध रसयुतैः अन्नपानैः न अर्थः'** यह विशेषण दिया है। वे सदा स्वरूप में लीन रहते हैं। संसारी जीवों का शरीर सात कुधातुओं से भरा अशुचि है, अशुचिता के संबंध होने से संसारी जीव उसे दूर करने के लिए नाना प्रकार के सुगन्धित पदार्थों का उपयोग करते हैं, परन्तु उन सिद्ध परमात्मा के शरीर के अभाव होने से अशुचिता का स्पर्श नहीं देखा जाता। अतः सुगन्धित द्रव्य तथा मालाओं से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है।

संसारी जीव निरन्तर मोहाभिभूत हो श्रम करता है। थकावट होने पर कोमल शैय्या आदि पर शयन करता है, परन्तु सिद्ध परमेष्ठी के पास अद्भुत

शक्ति है जिससे त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को देखते व जानते रहने पर भी वे कभी थकते नहीं है। जहाँ थकान नहीं है- ऐसे सिद्धों के कोमल शैय्या आदि से कोई प्रयोजन नहीं है।

सत्य ही है, जैसे रोग के अभाव में औषधि का कोई प्रयोजन नहीं, अंधकार के अभाव में दीपक का कोई उपयोग नहीं, ठीक उसी प्रकार पूर्ण स्वावलम्बी आत्मा के सिद्ध पर्याय में पूर्ण स्वाधीनता हो जाने पर परद्रव्य/पर-पदार्थ का कोई प्रयोजन नहीं रहता। वास्तव में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त सिद्ध परमात्मा ही है।

संसारी प्राणी तो संसार में रहता हुआ पराधीन ही है, क्योंकि कर्मों की बेड़ियाँ उसके पैरों में पड़ी हैं। जहाँ बेड़ियाँ हैं वहाँ स्वतंत्रता कहाँ ? जहाँ दुःख है वहाँ सुख कहाँ ? जहाँ धूप है वहाँ छाँव कहाँ ? जहाँ अंधकार है वहाँ प्रकाश कहाँ और जहाँ पराधीनता है वहाँ स्वाधीनता कहाँ ? कर्मों से परतंत्र यह जीव सदा दुःख ही दुःख भोगता है। कभी क्षणिक सुख मिल भी जाए तो वह भी दुःखों से सम्मिश्रित ही होता है, वास्तविक नहीं। वास्तविक सुख तो एकमात्र सिद्ध परमेष्ठियों का होता है।

सिद्धों के आठ गुणों में अभी तक हमने घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाले अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख व अनंत वीर्य- इन चार गुणों को समझा। अब हम सिद्धों के आठवें गुण अव्याबाधत्व को समझेंगे। वेदनीय कर्म के क्षय से जीव को अव्याबाधत्व गुण की प्राप्ति होती है। अरहंत पद की प्राप्ति पूर्वक ही सिद्ध अवस्था होती है। सिद्ध भक्ति में आचार्य पूज्यपाद महाराज कह रहे हैं-

छिन्दन् शेषानशेषान् निगलबलकलींस्तैरनन्तस्वभावैः,
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः।
अन्यैश्चान्यव्यपोह प्रवण विषय संप्राप्ति लब्धिप्रभावै-
रूर्ध्वं व्रज्या स्वभावात्, समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्रये॥5॥

अरहंत पद की प्राप्ति पूर्वक ही सिद्ध अवस्था होती है, अतः आचार्य देव सिद्ध भगवान की क्रमिक उन्नत अवस्था का वर्णन/स्तवन करते हुए स्तुति करते हैं :-

वे अरहंत भगवान बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान के चरम समय तक 63 प्रकृतियों-घातिया कर्मों की 47, नामकर्म की 13 और आयु कर्म की 3 प्रकृतियों को क्षय कर चुकते हैं। फिर भी अघातिया कर्मों की 85 प्रकृतियों की सत्ता बनी रहती हैं। ये कर्म प्रकृतियाँ जीव के लिए बेड़ी के समान कष्टप्रद हैं। संसार में रोकने वाली हैं। चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थान में व्युपरतक्रियानिर्वर्तीनि शुक्लध्यान के बल से अयोगी जिन उपान्त्य समय में 72 और अंत समय में 13 तथा अन्य आचार्यों के मतानुसार उपान्त्य समय में 73 व अंत समय में 12 इस प्रकार कुल 85 कर्म प्रकृतियों की सत्ता को जड़-मूल से उखाड़ देते हैं। वे परमात्मा नामकर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व, आयु कर्म के क्षय से अवगाहनत्व, गोत्र कर्म के नाश से अव्याबाधत्व, इन चार गुणों से तथा ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय व अंतराय के क्षय से प्रकट हुए क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक वीर्य रूप अनंत चतुष्टय इन आठ गुणों से शोभायमान होते हैं। समस्त घाति-अघाति कर्मों का क्षय होते ही वे मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने से एक समय में ही 7 राजू ऊपर लोकाग्र पर स्थित तनुवातवलय में 45 लाख योजन ऊपर सिद्धालय में जाकर सदा के लिए विराजमान हो जाते हैं।

आज हम सिद्धों के 8 गुणों में से वेदनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न अव्याबाधत्व गुण को समझने का प्रयास कर रहे हैं। अव्याबाधत्व का तात्पर्य है कि किसी भी प्रकार की बाधा नहीं होना। सिद्ध परमेष्ठी बाधा से रहित होते हैं।

वेदनीय कर्म के मुख्य दो भेद होते हैं-

(1) साता वेदनीय, (2) असाता वेदनीय।

साता वेदनीय :- जिस कर्म के उदय से अनुकूल सामग्रियाँ उपलब्ध होने से सुख की संवेदना होती है वह साता वेदनीय कर्म है। सुख अनेक प्रकार का होता है। एहिक सुख, पारलौकिक सुख, शारीरिक सुख, मानसिक सुख, परकृत सुख। शरीर का स्वस्थ रहना, मन में किसी भी प्रकार का तनाव न होना, धन सम्पदा, पुत्र, पुत्री, कुटुम्बीजन अनुकूल होना, दरिद्रता का अभाव इत्यादि सुख जीव को साता वेदनीय कर्म के उदय होने पर प्राप्त होते हैं।

असाता वेदनीय :- जिस कर्म के उदय से प्रतिकूल सामग्रियाँ प्राप्त होने से दुःख की संवेदना होती है वह असाता वेदनीय कर्म है। असाता वेदनीय कर्म उदय से ही जीव को शारीरिक, मानसिक, परकृत आदि अनेक प्रकार के दुःख प्राप्त होते हैं।

प्रायः कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि कोई-कोई व्यक्ति सदा बीमार ही बने रहते हैं, कभी सिर दर्द तो कभी पेट दर्द, कभी बुखार तो कभी पैर दर्द। कुछ न कुछ बना ही रहता है। कुछ नहीं तो Tension तो आज की आम बीमारी है जो प्रायः सभी को लगी रहती है। चाहे शादीसुदा हो या कुँवारा परन्तु Tension टेन्सन (10 बच्चे) सबके होते हैं। वे Tension पैदा किससे होते हैं तो उस टेन्सन के जनक वा जननी क्रोध, मान, माया, लोभ आदि चार कषायों की तीव्रता, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्यता आदि विकारी भाव है।

प्रायः टेन्सन उसे ही होता है जो अपने जीवन में नकारात्मक सोच रखता है। नकारात्मक सोच रखने वाला अपने स्वर्ग से जीवन को भी नरक बना लेता है तथा नकरात्मक सोच की भट्टी में अहर्निश जलता रहता है और नये-नये असाता वेदनीय कर्म को बाँधता रहता है। एक तो वैसे ही असाता का उदय चल रहा है इसलिए दुःख भोगना पड़ रहा है। ऊपर से नकारात्मक सोच बनाओगे तो दुःख और बढ़ेगा तथा नया-नया असाता वेदनीय कर्म बँध जायेगा। असाता वेदनीय कर्म के आस्रव के हेतुओं को बतलाते हुए आचार्य श्री उमास्वामी महाराज 'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रन्थ में कहते हैं-

दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य॥11॥
(अध्याय 6)

स्व-पर तथा दोनों में किये जाने वाले दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन – ये सब असाता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं।

दुःख :- पीड़ा रूप आत्मा का परिणाम दुःख है।

शोक :- उपकार करने वाले से संबंध टूट जाने पर जो विकलता होती है वह शोक है।

ताप :- अपवाद या तिरस्कार आदि के निमित्त से मन के खिन्न होने पर जो तीव्र संताप होता है वह ताप है।

आक्रन्दन :- परिताप के कारण आँसू गिराते हुए विलाप करते हुए खुलकर जोर-जोर से रोना आक्रन्दन है।

वध :- आयु, इन्द्रिय, बल और श्वासोच्छ्वास का जुदा कर देना वध है।

परिदेवन :- संक्लेश रूप परिणामों के होने पर गुणों का स्मरण और प्रशंसा करते हुए स्व-परोपकार की इच्छा से करुणाजनक रुदन परिदेवन है। अथवा इस प्रकार का करुणा जनक रुदन करना जिसे देखकर अन्य लोगों को भी रोना आ जाये वह परिदेवन है। ये सब असाता वेदनीय के आस्रव के कारण है। अथवा आर्त्त व रौद्र ध्यान में जो निरन्तर लगा रहता है वह भी असाता वेदनीय कर्म को बाँधता है।

आर्त्त ध्यान चार प्रकार का है :-

(1) इष्ट वियोगज आर्त्त ध्यान :- इष्ट के वियोग होने पर जो दुःख व शोक होता है वह इष्ट वियोगज आर्त्त ध्यान है।

(2) अनिष्ट संयोगज आर्त्त ध्यान :- अनिष्ट वस्तु के संयोग हो जाने पर यह कब मुझसे दूर हो ऐसी भावना से संतापित होना अनिष्ट संयोगज आर्त्त ध्यान है।

(3) पीड़ा चिंतन :- शरीर में किसी व्याधि आदि के हो जाने पर या तकलीफ के होने पर पीड़ा रूप परिणाम होना अथवा उसी की चिंता में डूबे रहना कि यह रोग कब ठीक होगा, कैसे ठीक होगा, क्या करूँ, क्या न करूँ, इत्यादि चिंता करना पीड़ा चिंतन नामक आर्त्त ध्यान है।

(4) निदान बंध :- आगामी भोगों की आकांक्षा में डूबे रहना।

रौद्र ध्यान के भी चार पाये हैं :-

(1) हिंसानन्दी रौद्र ध्यान :- हिंसा करके उसमें आनन्द मनाना।

(2) मृषानन्दी रौद्र ध्यान :- झूठ बोलकर उसमें आनन्द मनाना।

(3) चौर्यानन्दी रौद्र ध्यान :- चोरी कर उसमें आनन्द मनाना।

(4) विषय संरक्षणानन्दी रौद्र ध्यान :- विषयों की सामग्री जुटाने में लगे रहना तथा परिग्रह जोड़कर आनन्दित होना।

इन सभी आर्त्त व रौद्र ध्यानों से भी निरन्तर असाता वेदनीय कर्म बँधता है। इसके अलावा और भी जितनी पापभूत क्रियाएँ हैं, उनमें लगे रहने से असाता वेदनीय कर्म बँधता है।

साता अर्थात् सुख की संवेदना कराने वाला साता वेदनीय कर्म है। उसके आस्रव के कारणों को बतलाते हुए 'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रन्थ के 6वें अध्याय में आचार्य श्री उमास्वामी महाराज कहते हैं-

भूतव्रत्यनुकंपादान सरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य॥12॥

भूत अनुकम्पा, व्रती अनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि का योग तथा क्षान्ति व शौच साता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं।

(1) भूतानुकम्पा :- जो कर्मोदय के वश नरकादि विविध गतियों में उत्पन्न होते हैं ऐसे सृष्टि के सम्पूर्ण प्राणी भूत कहलाते हैं।

अनुकम्पा :- अनुग्रह से दयार्द्र चित्तवाले के दूसरे की पीड़ा को अपनी ही मानने का जो भाव होता है वह अनुकम्पा है।

(2) व्रत्यनुकम्पा :– हिंसादि पाँच पापों से एकदेश या सर्वदेश विरत होने वाले श्रावक व मुनि व्रती कहलाते हैं। उन सम्पूर्ण व्रतियों के रत्नत्रय की पालना निर्दोष रीति से पूर्ण हो– इस हेतु उनकी सेवा/वैय्यावृत्ति करना व्रत्यनुकम्पा है।

(3) सरागसंयम :– जो संसार के कारणों के त्याग के प्रति उत्सुक है परन्तु जिनके मन से राग के संस्कार अभी नष्ट नहीं हुए हैं वह सराग कहलाता है। सराग दशा के साथ जो संयम धारण किया जाता है, वह सराग (राग सहित) संयम कहलाता है।

सूत्र में आये 'आदि' शब्द से संयमासंयम, अकाम निर्जरा व बाल तप का भी ग्रहण होता है।

क्षांति :– क्रोधादि कषायों का निराकरण करना क्षांति है।

शौच :– लोभ के प्रकारों का त्याग करना शौच है।

सूत्र में 'इति' शब्द प्रकारवाची है। वे प्रकार ये हैं :– (1) अरहंत की पूजा करने में तत्परता, (2) बाल, वृद्ध आदि तपस्वियों की वैय्यावृत्य आदि करना।

इन सब शुभ क्रियाओं को करने से प्राणी साता वेदनीय कर्म का आस्रव करता है, परन्तु जिन्होंने सम्पूर्ण साता व असाता वेदनीय कर्म को नष्ट कर दिया है, वे सिद्ध परमेष्ठी अव्याबाधत्व गुण से सहित हो गये।

जब तक प्राणी संसार में रहता है तब तक बाधाएँ ही बाधाएँ रहती हैं। पंखा, कूलर, ए.सी. गर्मियों में सुख देता है। ठण्डी–ठण्डी हवा देता है परन्तु यदि लाईट चली जाए तो वह सुख दुःख में बदल जाता है। हीटर ठण्डियों में हमें ठण्ड से बचाता है; परन्तु वह भी करेन्ट की पराधीनता में है। करेन्ट न रहे तो सब बेकार। जिन्हें कूलर, पंखों के संस्कार होते हैं, उन्हें लाईट चले जाने पर रात्रि जागरण करना पड़ता है, क्योंकि बिना पंखे के नींद ही नहीं आती। जो रसगुल्ला रसना इन्द्रिय को संतुष्टि प्रदान कर रहा है, यदि

आवश्यकता से अधिक मात्रा में ले लिया जाए तो दुःख देता है। इन्द्रियजन्य सम्पूर्ण सुख बाधा से सहित है। प्रारम्भिक में सुख जैसे प्रतीत होते हैं, अन्त में दुःख देते हैं। 'इष्टोपदेश' ग्रन्थ में आचार्य पूज्यपाद महाराज कह रहे हैं :–

'आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान्।
अंते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं क सेवते सुधी॥

प्रारम्भ में जो कठिनाई से प्राप्त होते हैं, प्राप्त होने पर अतृप्ति उत्पन्न करते हैं व अंत में कठिनाई से छूटते हैं, ऐसे काम अथवा इन्द्रियजन्य सुखों का कौन बुद्धिमान सेवन करना चाहेगा ? अर्थात् कोई नहीं। कोई मूर्ख ही उनका सेवन करना चाहेगा।

कहने का तात्पर्य है– संसार में हमें जितना भी सुख प्रतीत होता है वह वास्तविक नहीं, बाधा सहित सुखाभास ही है। जबकि सिद्धों का जो सुख है वह अनुपम व बाधा रहित है। मोहनीय कर्म का क्षय कर वे अनंत सुख को प्राप्त कर चुके हैं। अब वेदनीय कर्म के क्षय से वे सम्पूर्ण बाधाओं से रहित अव्याबाधत्व गुण के धारी होते हैं। न तो वे किसी को बाधा पहुँचाते हैं, न किसी से बाधित होते हैं। एक ही स्थान पर अनंत सिद्ध बैठते हैं, परन्तु कोई किसी को धक्का नहीं देता कि तुम सरको, मैं यहाँ बैठूँगा। अपितु एक ही स्थान में अनन्त सिद्ध भी बैठ जायें तो उन्हें परस्पर में कोई बाधा नहीं होती। क्योंकि सुख–दुःख की बाधाएँ तब तक ही होती हैं, जब तक वेदनीय कर्म रहता है। वेदनीय कर्म के क्षय होते ही साता–असाता रूप सम्पूर्ण बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं और जीव सिद्धावस्था को प्राप्त कर लेता है।

हम भी सिद्धों के समान आठ ही नहीं अपितु अनंत गुणों को प्राप्त करें, यही इस सिद्धाष्ट प्रवचनमाला का पावन पुनीत उद्देश्य है।

इसी भावना के साथ...

॥ 1008 वासुपूज्य भगवान की जय॥